सीताराम सीताराम सीताराम
श्रीमैथिली रमणो विजयते
श्रीमन्मारुतनन्दनाय नमः
श्रीमते भगवते श्रीरामानन्दाचार्याय नमः
श्रीसीताराम-तत्त्व-प्रकाश
नाम-रूप-लीला-धामात्मक
पूर्वार्ध
संग्रहकर्त्ता तथा प्रकाशक
'सीताशरण'
सीताराम सीताराम सीताराम

❀ ॐ गं गुरवे नमः ❀

❀ श्रीमैथिली रमणो विजयते ❀

❀ श्रीमन्मारुतनन्दनायनमः ❀

❀ श्रीमतेभगवते जगतगुरु श्रीरामानन्दाचार्यायनमः ❀

* श्रीसीताराम-तत्त्वप्रकाश *

नाम, रूप, लीला, धामात्मक--पूर्वार्द्ध

संग्रहकर्ता लेखक एवं प्रकाशकः-

अनन्त श्रीस्वामी अग्रदेवाचार्य वंशावतंश

अनन्त श्रीजानकीशरणजी महाराज "मधुकर"

तच्चरणारविन्द भ्रमर

सीताशरण

श्रीचारुशीला मन्दिर, श्री चारुशीला बाग, श्रीजानकीघाट,

श्रीअयोध्याजी-फैजाबाद (उ०प्र०)

प्रथम संस्करण १०२५ प्रति | माघकृष्ण सप्तमी श्रीरामानन्द जयन्ती सं० २०३२ वि० सन् १९७६ ई० | न्यौछावर १५) रु०

मुद्रक :- मनीराम प्रिंटिंग प्रेस, श्रीअयोध्याजी ।

लिये छबलन में। नभ अरु नगर महानन्द छायो, जड़ चेतन नवनवलन में। "हर्षण" गगन नचत सुररवनी, बरषै पुष्प लव लवलन में ॥ १४ ॥ बाजै-बाजै बधइया अमिय रस बोर, मिथिला आनन्द भीनी। जनकलली जू प्रगट भई हैं। त्रिभुवन आनन्द आज लई हैं, सुख को सिन्धु उमड़ चहुँ ओर ॥ मिथिला० ॥ लक्ष्मीनिधि नवनेह समाये, देह गेह सब सुधिहिं भुलाये। सरबस दान दियो बिन मोर ॥ मिथिला० ॥ सुहृद सखासह उत्सव सरसत, राते रोम रोम रस बर्षत। लखि लखि तिहुँ जग होत विभोर ॥ मिथिला० ॥ सोहिल गान करहिं पुर नारी, विप्र बन्दि श्रुति विरत उचारी। बर्षिसुमन सुर जयजयशोर ॥ मिथिला० ॥ भू-नभ नवल कोलाहल छायो, विधि हरिहर निज नगर भुलायो। वेष छिपाय फिरत पुरखोर ॥मिथिला०॥ आनँद अवधि जनक की बेटी, सबहिं देत सुखसिन्धु समेटी। "हर्षण" हर्षहिं हृदय हिलोर ॥ मिथिला० ॥१५॥ जनकलली जू के भाल डिठौना। मधुर मधुर मृदु मंजुल शोभित, ज्यों मृगांक मृग चिन्ह सलोना ॥ चिलकत चिकुर शीश गभुआरे, बिलसत नागिनि के जिमि छौना। किलकि लली अम्बहिं अवलोकति, करपद पटकति उछरि अयोना ॥ सुख सुषमा शृँगार सुमूरति, पलना परी मधुर रस भौना। जननी राई लोन उतारति, भय भरि कोउ करि देय न टोना ॥ मधुर भाव भावित सुख सिन्धुहिं, बूड़ी बाछल प्रेम अहोना। डीठहिं डरति विवश ह्वै "हर्षण", पीवति रूप रसहिं दृग दोना ॥ १६ ॥

सुनयना माई धनि धनि तेरी बेटी। जाको अन्त अनन्त न पावत, सो तव गोद में लेटी। जेहि दिशि दृग किंचित अवलोकत, तेहि के सब दुख मेटी। यहि पद सद रति अति मुदताई, सब सुख सुकृत समेटी। श्रीगुरु कृपा सु "युगलविहारिनि" पाय प्रिया पिय भेंटी ॥ १७ ॥ तेरी लली चिरजीवे री माई। सकल लोक पद सेवहिं याके, सीता नाम सोहाई ॥ जग विजयी गुण शील मनोहर, नेह भर्यो रसदाई "रसिकअली" वर मिलिहैं याको, कोटि अनंग लजाई ॥ १८ ॥ जुग जुग जीवै तेरी बेटी सुनयना रानी। वड़भागिनि तेरे घर प्रगटी, सकल गुणन की खानी। अचल सोहाग भाग यश भाजन, भाविकजन जिय जानी। जेहि सेवत तजि लोक लाज गृह, काम बचन मन बानी ॥ श्रीमिथिलापुर नारि निहोरत, बचन सुधा जनु सानी। "ज्ञानाअलि" सिय जन्म सोहिलो, त्रिभुवन सब सुखदानी ॥ १९ ॥ सुनैना माई लाड़िलि युग-युग जीजै। गोद प्रमोद विनोद विनोदति अतिहित पय पीजै ॥ मूरति प्रीति प्रतीति सुपूरित, भव भय दुख छीजै। "युगलविहारिन" सोहिलो गावैं सुता पद रति दीजै ॥ २० ॥ चिर जीवो हमारी दुलारी सिया। जाके हित मिथिलेश सुनैना, अमित जनम बहु सुतपकिया ॥ गनपति गौरि महेश कृपा से, पूरीभइ अभिलाष हिया। अब नित नव आनँद सरसैइहैं, सुख पइहैं मिथिलाकी धिया ॥ नर नारी मनमाने मनोरथ पाय न फूले समैइहैं हिया। "मधुपअली" सिय के ब्याहन को, जब ऐहैं अवधेश पिया ॥ २१ ॥ हमरी लाड़िली गुसइयाँ कुशल राखैं ॥ जाकी कृपा कोर नितनूतन

हम आनन्द सुधा चाखैं। देवी देव सब पूजो मिलिके, जागें नहीं कोउ मनमाखैं॥ वर अनु-कूल देव जगदीश्वर, पूजें हिया की अभिलाषें। "मधुपअली" युग युग जिवो स्वामिनि, श्रीसियजू की जय जय भाषें॥२२॥ मैया मैं आई बड़ी दूर से खिलौना ले लो॥ आज सुनी मिथिलेश भवन में, लली प्रगट भइ आई। जनक नगर नर नारि मुदितमन, घर घर बजत बधाई। भाँति भाँति के सुभग खिलौना अपने हाथ बनाई। अति अनुराग पगहि पग चलिके, मैं तुमरे घर आई। मेरी यह अभिलाष पूरि करि देहु सुनैना माई। मैं अपनी लै गोद लड़ैती को तनि लेउँ खेलाई॥ मोद विनोद जनक आँगन में, दिनप्रति बढ़ै सदाई। "मधुपअली" मुख निरखि लली को, जन्म सुफल होइ जाई॥ २३॥ खेलत मोरी लाड़िली झुनझुनवाँ। यह झुनझुनवाँ को शब्द मनोहर, सुर मुनि मन ललचनवाँ॥ यह झुनझुनवाँ सों सब जग खेलै, शिव जू के कर को खेलनवाँ। यह झुनझुनवाँ में बसत सकल जग, विधि शिव इन्द्र भवनवाँ॥ हर हर डरि शिव के झुनझुनवाँ में, बसि रह्यो आइ मदनवाँ। "मधुपअली" याके शब्द सुनत को, ललचत अवध ललनवाँ॥ २४॥ सोहिलो त्रिभुवन तान आज चहुँ ओरी हो। ललना आनँद मगन दिखात सबहिं बनि भोरी हो॥ धनि धनि रानी भूप सुयश जग जोरी हो। ब्रह्मशक्ति बनि पुत्रि जाहि रस बोरी हो॥ विधि हरिहर सुर सिद्ध करत जय शोरी हो। ललना नृत्यहि देव विमान लाज जगछोरी हो॥ दुन्दुभि बजति प्रसून झरत दिवि ठौरी हो। ललना- तैसेहिं भू महँ आज पंच ध्वनि लोरी हो॥ दान विविध विधि देत भूप शिरमौरी हो। ललना चन्दन चोवा इत्र छिरक मग दौरी हो॥ दधि की कीच मचाय सबहिं हदत्रोरी हो। ललना-नाचहिं लोग लुगाइ प्रेमपथ भोरी हो॥ भाँड़ विदूषक स्वाँग करत हँस होरी हो। ललना आनन्द आनन्द छाव त्रिजग चित चोरी हो॥ श्रीजनक लली अनुराग अगत रस घोरी हो। ललना-'हर्षण" हर्ष समाय नस्यो भव घोरी हो॥ २५॥

प्रगटीं सिय सुकुमारि री सजनी। सुनि सुनि प्रेममगन नरनारी,पावतमोद अपार रि सजनी। नृतत गावत हिय सुखपावत, संतति सर्वसवारि रि सजनी॥ नृप हर्षाय धेनु गऊ बाँटत, रानी बहुमणिहार रि सजनी॥ घरघर चौक पुराइ सुआसिनि, गावत मंगल-चार रि सजनी॥ सुरगन हर्षि सुमन बर्षावत बोलत जय जयकार रि सजनी। प्राणहुँ ते प्रिय जीवन जोकी, रघुवर प्राण पियारि रि सजनी॥ नृप लाड़िली सदा चिरजीवें, शुभ आशीष हमारि सजनी। "गुनशीला" मुख कंज मंजु लखि, रहौं सदा बलिहारि रि सजनी॥२६॥ मंगल आज जनकपुर घर घर मंगल हो। ललना-प्रगटीं सिय सुकुमारि चहूँ दिशि मंगल हो॥ पुर नर नारि मुदित मन मोद मनावहिं हो। ललना-बन्दनवार पताका द्वार सजावहि हो मणिमय चौकपुराय कलशधरवावहिं हो। ललना-तिनपर जगमन दीपक ज्योति जगावहि हो॥ नृत्यहि भरि अनुराग सोहिलो गावहिं हो। ललना निज निज सम्पति पुरजन सकल लुटावहिं हो॥ सुरगन चढ़े विमान सुमन बर्षावहिं हो। ललना

प्रमुदित देहिं अशीष महाँ सुख पावहिं हो ॥ ऋषि मुनि जन मन मुदित जयति जय बोलहिं हो। ललना-परम प्रेमरँस रँगे नारि नर डोलहिं हो ॥ नृपति खुलायो कोष जाहि जो भावहिं हो। ललना-निज निज रुचि अनुकूल सकल लै जावहिं हो ॥ मातन मन अति मोद परम सुख पावहिं हो। ललना-माणिक मोती मणिन सुमाल लुटावहिं हो ॥ याचक भये अयाचक जय ध्वनि लावहिं हो। ललना-विप्र वृन्द लहि दान प्रेम रस छावहिं हो ॥ अति प्रसन्न मन उमगि सुवेद सुनावहिं हो। ललना-चिरंजीव हो लली नृपति यश, पावहिं हो ॥ जब लगि महि अहि शीश गंगजल धारा हो। ललना-जब लगि रवि शशि उदय रहहि नभतारा हो ॥ तब तक कीर्ति सुअचल अशीष हमारी हो। ललना-"सीताशरण" विलोकि चरण बलिहारी हो ॥२७॥

बाजे बाजे हो आज मंगल बधैया बाजे बाजे हो। मिथिलपुर आनँद उमगि पर्‌यो, प्रगटीं भूपति भवन सिया बाजे बाजे हो ॥ प्रेम प्रमोद भरे नर नारी, मणिन लुटावहिं हर्षि हिया बाजे बाजे हो। कोउ गावहिं नाचहिं मुखमाते, करहिं विदूषक विविध क्रिया बाजे बाजे हो ॥ दुन्दुभि नाद सुमन सुर बर्षत सकल अशीषहिं विबुध थिया बाजे बाजे हो। परमानन्द मगन नृप दम्पति, हर्षित सर्वस वारि दिया बाजे बाजे ॥ गोविन्द जन्म उछाह भरे उर; मंजुल मंगल गान किया बाजे बाजे हो ॥ २८ ॥ सजनी सुखसार प्रगटीं सिया सुकुमारी। माधव सुमास सोहावन, परम मन भावन, सुरस वर्षावन। नौमी मंगलवार प्रगटीं सिया सुकुमारी ॥ सीता जनम जब लीना, सबहिं सुखदीना, महा रस भीना। भरे भुवन भण्डार प्रगटीं सिया सुकुमारी ॥ पुरजन सनेह समाये, हृदय हर्षाये, महाँ सुख छाये। आये नृप द्वार प्रगटीं सिया सुकुमारी ॥ राजा निरखि हर्षाये, परम सुख पाये, सुदान लुटाये। मणि मुक्तनहार प्रगटीं सिया सुकुमारी ॥ गावत मुदित नर नारी, लहत सुख भारी, सनेह सम्हारी। नृत्यत भरि प्यार प्रगटीं सिया सुकुमारी ॥ मंगल बधाई गावैं, सुमन वर्षावैं, देव हर्षावैं। कहि जयकार प्रगटीं सिया सुकुमारी ॥ अनुपम स्वरूप निहारी, रहौं बलिहारी, करौं जयकारी। निज सर्वसवार प्रगटीं सिया सुकुमारी ॥ "सीताशरण" सिय आशा चरण को दासा मिटी भव पाशा। गावैं मंगलचार प्रगटीं सिया सुकुमारी ॥ सजनी० ॥ २९ ॥

बधाई का उत्सव होने बाद, बारहाँ, अन्नप्रासन कर्णवेध इत्यादि अवसरों पर परमानन्द वर्धक महान उत्सव हुआ। श्रीमैथिली जू कुछ बड़ी हो गईं तब अपनी अनुजाओं एवं सखियों के साथ आँगन में खेलने लगीं। एक दिन श्रीकिशोरी जू ने माता जी कहा कि--

मैया मोरी काहे न कीजै चोटी। विधुर बाल मम आनन आवत, करौं काह किन कोटी ॥ क्रीड़न काल उपाधि करत जब, है जावत मन मोटी। भली भाँति गूँथै नहिं तू री, समुझि मनहिं मोहिं छोटी ॥ अबहिं सुधार सबहिं विधि अम्बा, केश कला

बिद छोटी। बिना गुँथे नहिं खेलन जइहौं, जाउँ पलँग पर लोटी॥ कौन काज महँ व्यस्त कहहु सत, दासी दास न टोटी। "हर्षण" मातु कही तब गुथिहौं जब खावै घिउ रोटी॥३०

माताजी के इस प्रकार वात्सल्य भाव भरे बचन सुनकर श्रीमैथिलीजू ने बहिनों के साथ घी रोटी खाई, तब माताजी चोटी सँभालने लगीं—

मातु सम्हारति चोटी लली की। इतर फुलेल लगाय के कंघी, कौन दुलारति छोटी॥ सुठि सहकारि केशावलि कारी, नागिन सी भुँइ लोटी। बहुरि गूथ मणि गुच्छन दीनी, बेणी उत्तम कोटी॥ सुमन सुगन्धि सदशिर भूषण, शोभित सुभग गजोटी। शशि शतकोटी लजत लखि आनन, रँती रमा सब छोटी॥ दै दर्पण जननी जिय चाहति, होय न दृग ते ओटी। लखत लाड़िली भई मगन मन,'हर्षण' लखि भल चोटी॥३१॥

इस प्रकार चोटी हो जाने के बाद श्रीकिशोरीजू सहचरियों के साथ आँगन में खेलने लगीं :— सखिन सँग खेलहिं जनक दुलारी। चारु शिला हेमादिक अलिरौं, खेलन साज सँवारी। गुड्डा गुड़िया व्याह रचावहिं, करत बरात तयारी। व्याह करावहिं गारी गावहिं, मानहिं मोद अपारी॥ कन्दुक क्रीड़हिं भौंर नचावहि, विहँसत दै किलकारी। ठुमुकि चलैं पग नूपुर बाजैं, सखि अंशन भुजधारी। सखियन स्वकर पवावहिं हित सों, हिय अति होहिं सुखारी। तेउ सब सियहिं पवावहिं निजकर, छवि लखि तनमन वारी॥ बाल भाव सम्पन्न मैथिली, करत अमित खिलवारी। "गुनशीला" लखि सिय शिशु लीला, मातु होहिं बलिहारी॥ ३२॥

खेलते खेलते जब सब सखियाँ थक गईं तब अपने अपने घर चली गईं। श्री-मैथिलीजू भी माताजी की गोदमें बैठकर अलसाने लगीं। तब माताजी से कहने लगींकि:— मैया अब नहिं जात जगी। झुकि झुकि परौं बैठ तव गोदी, निद्रा अधिक लगी॥ पग पिरात किय क्रीड़ा बहुती, अलियन प्रेम पगी। पलँग परावः स्वयं सँग पौढ़ी, देहि सोवाय सगी। सुनि प्रिय बचन पुत्रि नव नेहनि, रस वात्सल्य रँगी अंक उठाय सियहिं लै सोई, मनहुँ नहिं बिलगी॥ नींदभ बदन सोहावन सिय को, लखतहिं भान भगी। 'हर्षण' जननि सफल जिय जानति, जानकि ज्योति जगी॥ ३३॥ प्रातःकाल ब्रह्म बेला में माताजी जाग कर श्रीकिशोरी जू को दुलार पूर्वक जगाईं। इतने में भगिनि प्रेम पगे श्रीलक्ष्मीनिधि जी आये और श्रीमैथिली जू को दुलार पूर्वक विविध खिलौने देकर प्रसन्न करने लगे।

प्रात समय उठि अम्बसुनैना सिय कहँ जाय जगावै। उठहु उठहु मम लाड़िलि लोनी, कलरव शकुन जनावै॥ अरुणोदय बेला अब आई, उड़गन मलिन जनावै। संध्या करहिं वेद द्विज उचरें, चिन्तत ब्रह्म सुहावैं॥ नौबत बाजति भैरवि रागहिं, गायक गण गुण गावैं। अलियाँ आय बैठि तव पौरी, दरश हेतु ललचावैं। सुनत सिया उठि बैठि पलँग पै, दृग माँपति अलसावैं। जननि उठाय "हर्ष" उर लाई, यत्ननि नींद भगावैं॥ ३४॥ भोर भये जनक दुलारी। समय समुझि लक्ष्मीनिधि आये, अनुजा प्रीति अपारी॥

निशाविरह आतुर सम भाषत, भ्रात भगिनि सुखकारी। मन प्रसन्न मुख पंकज निकस्यो, इक इक बाहिं निहारी॥ अंक लिये सिय श्रीनिधि सोहत, चुम्बत बदन पियारी। लालिहु ललकि भ्रात गल लिपटी, नेह नवल अविकारी॥ खेलन खान वस्तु भल दीने जनक सुवन सब वारी। "हर्षण" नेह निरखि दोउ नयनन, बहत हृदय रस धारी॥ ३५॥ दिन में जब अनेक सखियों के साथ लाड़िली श्री किशोरीजू नानाप्रकार के रसमय खेलखेलनेलगीं, उसपरमोत्सवानन्द को देखकर श्रीपार्वतीजी तथा श्रीलक्ष्मीजी एवं श्री शारदाजी से भी न रहागया, वे सब इन्द्राणी इत्यादि को साथ लेकर श्रीकिशोरीजू के समान अवस्था की बालिका बनकर श्रीमैथिलीजू के बालिका समाज में मिलकर लाड़िली श्री किशोरीजू के साथ खेलने लगीं :-

सियाजू खेल सखिन सँग करहीं। लखिलखि उमा रमा ब्रह्मानी, आनन्द हियमें भरहीं॥ वेष बदलि बनि सिय सम बाला, अलियन मध्य बिचरहीं। जानगईं सर्वज्ञ मैथिली, सत्कारत सुख सरहीं॥ लहि बहुप्यार दुलार सियाको, मंजुमनोरथ करहीं। "गुनशीला" नित खेलौं सिय सँग, अति सुख सागर परहीं॥३६॥ कभी कभी श्रीलक्ष्मीनिधि भी श्रीकिशोरी जू की अँगुली पकड़कर महल की ही पुष्पवाटिका में ले जाते हैं। सब सखियाँ भैया जी के साथ वहाँ अनेक कौतुक विनोद करती हैं। एक मयूर को नृत्य करते देखकर भैयाजी ने श्रीकिशोरीजू से कहा कि हे लाड़िली जू—छहर छबि नृत्यत नव नव मोर। लखहू लली फहराय पंख प्रिय, शोभित सुख प्रद प्रेम विभोर॥ मधुर मधुर मृदु बोली बोलत, बारिद सों कर प्रीति अथोर। सुनत भ्रात की बात जनकजा, देखि सुखी भइ हृदय हिलोर॥ कहति मोहिं चाहिये यह केकी, क्रीड़ा करौं सखिनसँग जोर।—वह परम बड़भागी मोर जो श्रीकिशोरी जू का परम कृपापात्र पार्षद था, उनकी क्रीड़ा का सहायक होने के लिये ही उपस्थित हुआ था, अस्तु साधारण संकेत पाते ही श्रीमैथिलीजू के निकट आगया—करि प्रयत्न लक्ष्मीनिधि लावे, परसि प्रसन्न भईं सुनिशोर॥ कछुक काल रहि गयो बहुरि उड़ि, सिसकन लगीं सिया तेहि ठौर। श्रीनिधि कहे याहु ते सुन्दर, "हर्षण" देहुँ शकुन चितचोर॥ ३७॥

उस मोर के उड़ जाने से बालाभाव सम्पन्न श्रीकिशोरीजू को सिसकते देखकर भैयाजी ने समझाकर कहा कि लाड़िलीजू मैं इससे भी सुन्दर मोर आपको मँगवा दूँगा। यह उड़ गया इसे उड़ जाने दो। ऐसा कहकर एक गेंद दिये कि आप सखियों के साथ इस गेंद से खेलो। श्री किशोरीजी सखियों के साथ गेंद खेलने लगीं—कन्दुक क्रीड़ति जनक दुलारी। उछरि उछरि सखियन बिच प्रमुदित, होवति परम सुखारी॥ दौरि चलत गिर परति उठति द्रुत, बिहँसत दै किलकारी। 'गुनशीला" लखि भ्रात मुदित मन पागत प्रेम अपारी॥ ३८॥ कबहूँ सिय जू चंग उड़ावैं अतिसय ऊँचे कबहूँ नीचे, खैंचि परम सुख पावैं॥ लखि लखि सखी सहेली प्रमुदित, आनँद सिन्धु समावैं। "गुनशीला" लखि

मैया अपनो तनमन सब न्यौछावैं ॥ ३६ ॥ पतंग उड़ाने के बाद श्रीकिशोरीजू ने कहा कि भैयाजी मैं खेलते खेलते थक गई हूँ । अब आप मुझे हिंडोरा में बिठाकर झूला झुलाइये । अपनो आत्मधन प्राण सर्वस्व श्रीलाड़िलीजू की प्यार भरी बातें सुनकर भैयाजी श्रीकिशोरीजू को अंक में उठाकर हिंडोरा में बैठ गये । सखियाँ झोंका देने लगीं ।

झूलति श्रावण सिया हिंडोर । बैठी भैया अंक विराजति मन महँ मोद अथोर ॥ झूलन वेग जबहिं कछु दरशत, भय भरि बनत विभोर । लिपटि रहत भ्राता तन पकरी, लखतहिं दृग तेहि ठौर ॥ मन्द मन्द झूलनगति होवत, जाति सिया सुखबोर । अनुजा आनँद अतिहि अघावै, सोई करतब मोर ॥ अस विचारि हिय लाड़िहि लाली, श्रीनिधि झुलत हिलोर । "हर्षण" सियहु अधिक सुखसानति, भ्रात प्यार लहि जोर ॥४०॥ कुछ समय बीतने पर श्रीलक्ष्मीनिधिजी का व्याहोत्सव हुआ, महाराज श्री श्रीधर कन्या श्रीसिद्धि कुँवरि नववधू बनकर श्रीमिथिलाजी आईं । तब भैया श्रीलक्ष्मीनिधिजी ने श्रीसिद्धिकुँवरि को शिक्षा दी कि– जनक सुवन सिखवत निज प्यारी । श्रीधर राज-कुँआरि सुखसागर, सब विधि मम अनुरूप सम्हारी ॥ सिय सेवहिं गुनि मम शुचि सेवा, तासु चाह ममचाह बिचारी । अष्ट याम सेवहु सब भाँतिहिं, जेहि ते रहैं प्रसन्न दुलारी ॥ अनुजा सुखी सुखो मैं सहजहिं, तासु दुखहिं नहिं सकौं निहारी । मंगल लली मोर बड़ मंगल, जानेउ सदा मोर हितकारी ॥ हौ सहधर्मिणि सहचरि मोरी, प्राण प्रिया दुहुँकुल उजियारी । सुनि सिखमानि सिद्धि परि पैयाँ, "हर्षण" हर्षि भई बलिहारी ॥ ४१ ॥

सिद्धि सिया पै सर्वस वारे रे । लक्ष्मीनिधि जिमि सिय सुख चाहत, प्राणन प्राण पियारी रे ॥ श्रीधर कुँवरि तथा निज ननदहिं, मानत आत्म अधारी रे । सिदहु सुखी भाभी भल पाई, परमा प्रीति पसारी रे ॥ मज्जन अशन शयन सँग संगहिं, इक एकहिं सुखकारी रे । निज निज मनहिं परस्पर मेलो, क्षीर नीर इक धारी रे ॥ लखिलखि जनक सुनैना हर्षत, श्रीनिधि हर्ष अपारी रे । "हर्षण" सुख की सरित बहत नित, मज्जहिं पुर नर नारी रे ॥ ४२ ॥ भगिनि भवन जब जावत भैया । द्वार आय भेंटति अनुरागी, सिया सुभग सुख देया ॥ मिलनि प्रीति किमि कहै कबी कोउ, मन बाणी नहिं जैया । चन्दन चर्चि सुमाल पिन्हावति, निजकर गुथो सुहइया ॥ पान गन्ध दै मंगल गावति, सखिन सहित पुलकइया श्रीनिधि अंक बिठाय प्यारि बहुं, देत भेंट बहुतइया ॥ कथा-कहानी सुखद सुनावत, आनँन अतिहिं अघैया । "हर्षण" भगिनी भ्रात परस्पर, लखि लखि नेह नहइया ॥ ४३ ॥ सखिन घर कबहुँ जाव सिय प्यारी । ऊँच नींच को भेद भुलाई, सबको करति सुखारी ॥ सर्वेश्वरि जग जीवन दानी, रूप शील उजियारी । "गुनशीला" परतन्त्र प्रेम के जीवन मूरि हमारी ॥ ४४ ॥

इस प्रकार कुछ समय बीतने पर श्रीकिशोरी जी को अपने प्राणधन जीवन सर्वस्व श्रीसाकेतनाथ की स्मृति आ गई । अपने हाथ से वस्त्र की मूर्ति बनाकर अपने कक्ष

में एकान्त पाकर पूजन करके ध्यान में प्रियतम से भेंट करने लगीं । पद :—पूजति सिय साकेत बिहारी, पराधाम को रूप सम्हारी । बैठि विविक्त यदपि बालिका, ध्यान मगन दृग अँसुअन धारी ॥ जाय जननि अरु जनक विलोके, वस्त्र विनिर्मित मूरति प्यारी । सियहिं जगाय गोद लै बोले, सुन्दर विग्रह तव सुखकारी ॥ पूजन हित बनवैहैं लाड़िलि, जस रुचि होवै हिया तिहारी । अस कहि तुरत मूर्ति बनवाई, नीलमणी की सिय मत पारी ॥ सोई लगी पूजिवे चित दै, प्रेमपगी हिय हर्ष अपारी । "हर्षण" हियको भाव धन्य धनि, धनि धनि निमकुल की उजियारी ॥ ४५ ॥ सिय के सदन उछाह भर्यो री । भैया द्वितिया आज अनूपम, भ्रात निमन्त्रण लली कर्योरी ॥ विविध भाँति व्यंजन बनवाई, पकुसि जिमावत यत्न चर्यो री । पहसनिचलनि मधुर मधु बोलनि, सुधा सरिस शुचिअन्न धर्यो री ॥ लक्ष्मीनिधिपावत, अनुरागे नवल नेह दृग झरनि झर्योरी । अवर लेहिं यह आपहिं योगू, कहति सिया भल भाव ढर्योरी ॥ भ्रात भगिनि सुख सिन्धु समाये, निरखत सबके, मनहिं हर्यो री । "हर्षण" सुमिरि दुहुँन की प्रीती, चहत सबहिं भव सिन्धु तर्यो री ॥ ४६ ॥

कार्तिक शुक्ल भैया दुइज को श्रीकिशोरीजी ने अपने अग्रज श्रीलक्ष्मीनिधि को निमन्त्रण दिया, अपनी सखियों के साथ उमंग में भरकर नाना प्रकार व्यंजन पकवान बनवाये. और अपने हाथ से परस परसकर भैयाज को भोजन कराया, पश्चात भैया जी से कहा कि—पद-आज नेग मनमानी लहौंगी । भैया देन कहहिं तो सुनिवो, उर उमंग जो उठति कहौंगी ॥ वस्त्राभूषण देय भोराई सोन चली चित चाह चहौंगी । सुनि सिय वैन मधुर मुसुकाई, बन्धु कह्यो हिय वस्तु गहौगी ॥ मुख प्रसन्न लक्ष्मीनिधि अनुजा, बोली तब बिन कछु न चहौंगी । गोद बिठाय प्यार नित मोहहुँ, देत रहहु सुख सुधा सनौंगी ॥ सुनि सुखमानि नेह भरि नयनन, अग्रज कहेउ तुमहिं विदौगी । "हर्षण" पुनि दै वस्त्र विभूषण, चूमि मुखहिं कह हृदय रहौगी ॥ ४७ ॥ इस प्रकार सुखमय कुछ समय वीत गया, तब एक बार व्योम वीथियों विचरते हुये में विचरते हुये देवऋषि श्रीनारद जी श्रीमिथिलेश जी के महल में पधारे, माता श्रीसुनैनाजी समेत श्रीजनकजी ने श्रीनारद जी का स्वागत सत्कार किया, श्रीनारदजी ने श्रीरामजन्म से बधाई उत्सव बाललीला का गान किया जिसे सुनकर श्रीमैथिली जू को प्रियतम की प्रगाढ़तम स्मृति जग गई, किन्तु शील संकोच के कारण अपने भाव को किसी से व्यक्त नहीं किया । किसी दिन माता सुनैनाजी किसी कार्य में व्यस्त थीं. समयाभाव होने के कारण स्वयं शिवधनुष पूजन करने नहीं जा सकीं, श्रीकिशोरी जी को सखियों समेत भेज दिये. कि आज हमें समय नहीं है, आपही शिव धनुष पूजनकर आओ । श्रीकिशोरीजी ने अपने समाज समेत जाकर सादर सप्रेम धनुष का पूजन किया, और समाज समेत परिक्रमा करने लगीं । तब श्रीमैथिलीजू की सारी का छोर धनुष की नोक में फँस गया, परिक्रमा में संलग्नचित श्रीकिशोरीजी ने नहीं जान पाया कि हमारी सारी का छोर धनुष में अरुझ गया है ।

परिणामतः धनुष भी चारों ओर घूमने लगा, सखियों ने देखा तो श्रीकिशोरी जू को रोक कर सारी को धनुष से अलग किया, सभी के मन में भय लगने लगा कि कहीं शंकरजी अप्रसन्न न हो जायें। पुनः जब सखियों समेत श्रीमैथिली जू माताजी के पास आईं, तब सखियों के मुख से शिव धनुष का घूमना सुनकर माता श्रीसुनैनाजी एवं श्रीविदेहजी को आश्चर्य होने लगा कि ऐसा कैसे हो गया। पश्चात् महाराज ने स्वयं देखा तो बात सत्य थी, तब श्रीविदेहजी के मन में विचार उठने लगे कि—जिन श्रीजानकी जी की सारी में उलझकर धनुष कई बार घूम गया, जो धनुष किसी बलवान से भी नहीं उठता है। यह प्रसंग इस प्रकार भी सुना गया है कि माताजी की आज्ञा से श्रीकिशोरी जू जब धनुष पूजने गईं तो देखा कि चारों ओर भूमि तो स्वच्छ है, किन्तु धनुष के नीचे धूल जमी है, उसमें घास जम गई है। श्रीकिशोरीजी ने बायें हाथ से धनुष को उठाकर दाहिने हाथ से नीचे की भूमि स्वच्छ करके चौका लगा दिया। और जब सखियों द्वारा श्री-विदेहजी को विदित हुआ कि आज श्रीकिशोरी जी ने धनुष को बाँयें हाथ से उठ कर वहाँ चौका लगा दिया हैं। तब श्रीविदेहजी के पूछने पर श्रीकिशोरी जी ने कहा कि—

कवित्त—दाऊ आज अम्ब की सुआयसु लहि मुदित हृदय, गई उत जहाँ धनुष धरेउ बिशाल। देखी सब भूमि स्वच्छ परम प्रकाशमान, धनुप के तरे किन्तु धूरि त्रण जाल है॥ एक हाथ सों उठाय स्वच्छ करि आई तहाँ, कीन्हों सविधि पूजन मैं धूप दीप माल है। चलिये भला देखिये सुठौर रमणीक अति तात अब जात सुखदाई सब काल है॥

वार्ता—हे पिताजी! मैं आज माताजी की आज्ञा से जहाँ धनुष रखा हुआ है. वहाँ चौका लगाने गई, तो मैंने देखा कि चारों ओर सब भूमि स्वच्छ है। किन्तु धनुष के नीचे धूल में बहुत घास जमी है। मैंने एक हाथ से धनुष को उठाकर धनुष के नीचे से धूल और घास को हटाकर चौका लगा दिया, और धूप दीप नैवेद्य माला फूल चन्दन इत्यादि से सविधि धनुष का पूजन भी कर दिया है। चलिये भला देखिये तो अब वहाँ कितना अच्छा लगता है। श्रीकिशोरीजू के बचनों को सुनकर महाराज मन ही मन सोचने लगे कि जो धनुष हमारे यहाँ कई पीढ़ी से रक्खा है। किन्तु आज तक जहाँ शंकरजी रख गये थे वहीं धरा है। कोई वीर भी नहीं उठा पाता है। उसी धनुष को श्रीकिशोरीजू ने बाँयें हाथ से उठा लिया है। तब इनके समान बलवान योग्य बर कहाँ और कैसे मिलेगा। लोक की मर्यादा है कि वर कन्या से सब प्रकार श्रेष्ठ होना चाहिये। श्रीविदेहजी इसी विचार में मग्न होकर भगवान् शंकरजीके मन्दिर में जाकर ध्यान करने लगे:-ध्यान बीच शिव आयसु दीनो। मम पिनाक जो तव गृह राजत। ताकर भेद सुनहु सुप्रवीनो॥ सो केवल वर ब्रह्म बुलावन, अन्य हेतु नहिं चित्तहिं चीनो। धनुर्यज्ञ साधहु निमि भूषण, करि प्रण यथा कहहु सुख भीनो॥ तोरै जो कोइ चाप विशाला, लहहिं

सिया जय कीर्ति सुखीनो। इष्टदेव मम यहि मिस आई, त्यहि हैं अली अवस रस भीनो॥ चिन्ताहरणि प्रणसि चितचिन्ता, दैहैं आनन्द तुमहिं वलीनो। "हर्षण" जागि भूप हिय हर्षेउ, शम्भु सुआयु शिर धरि कीनो॥ ४८॥ वार्ता—ध्यान से उपराम होने पर सभा में आकर गुरुदेव जी से श्रीकिशोरीजी का धनुष उठाना, अपने मन की चिन्ता, और ध्यान में भगवान् शंकरजी की आज्ञा सुनाई। तब श्री याज्ञवल्कि जी तथा अन्य महर्षि एवं ब्राह्मणों ने कहा कि राजन्! आप भगवान् शंकरजी की आज्ञा का अवश्य पालन करिये, शंकरजी की कृपा से कुछ भी हानि नहीं होगी, सब ठीक होगा। आप शुभ दिन सोधकर धनुषयज्ञ प्रारम्भ कर दीजिये। श्रीगुरुदेवजी एवं ब्राह्मणों की आज्ञा से श्रीजनक जी ने धनुषयज्ञ की तैयारी करने की आज्ञा मन्त्री और सेवकों को दे दी। मन्त्रियों के विचार से धनुषयज्ञ की तैयारी होने लगी। समस्त जनकपुर में बिजली की भाँति यह समाचार व्याप्त हो गया। श्रीलक्ष्मीनिधिजी अपने अन्तःपुर में एकान्त में श्रीसिद्धिजी से बोले कि मेरे विचार से तो यदि महाराज श्रीदशरथजी के आँगन में खेलने वाले श्रीराम जी के साथ श्रीकिशोरीजी का व्याह हो जाय तो, हम लोगों का जीवन कृतार्थ हो जाये। श्रीरामजी के अतिरिक्त श्रीकिशोरीजी के योग्य दूसरा वर मेरी समझ में तो संसार में कहीं नहीं है। प्रिये मुझे स्वप्न में भगवान् शंकरजी ने ठीक कहा है कि— मेरे इष्टदेव श्रीरामजी आपके बहनोई होंगे। प्रिये मेरा यह स्वप्न अवश्य ही सत्य होगा। अपने मन में मनोरथ करते हैं कि—[पद]—दरश कब दैहो राजकिशोर। कोटि काम कमनीय माधुरी, श्यामवरण चितचोर॥ कब मम हृदय लपटि अति हित सों, मृदु हँसि दृग दृग जोर। हे "गुणशील" स्वरूप उजागर, करि दैहो रस बोर॥ ४६॥ पुनः कहने लगे कि प्रिये! मैंने यह भी स्वप्न में देखा कि—

दो०-कौशिक मुनि के संग में, रामलखन दोउ भाइ। आये मिथिला देश में लखत नगर हर्षाइ॥ ॥ प्रेम सहित हम से मिले, अति अपनत्व जनाइ। मृदु हँसि बोलनि मिलनि अरु, भाव न वरणि सिराइ॥ ॥ फिर कहने लगे कि—इस समय श्री-मिथिलाजी के समान कोई भी भाग्यशाली नहीं है। जहाँ आदि शक्ति प्रगट हुई हैं अस्तु वहाँ की महिमा कौन कह सकता है॥ श्रीविदेहजी ने धनुर्यज्ञ की तैयारी करवाकर सभी देशों में डुग्गी "" पिटवा दी कि जो कोई भी वीर भगवान् शंकर जी के धनुष को उठाकर प्रत्यञ्चा चढ़ाये और धनुष का खण्डन करेगा। उसीको श्रीजानकी अर्पण की जावेंगी। यह समाचार सुनकर अनेक देशों के राजा राजकुमार तथा राजकुमारों के वेष में देवता दैत्य भी आने लगे। श्रीजनकजी की ओर से सभी आगन्तुकों को समुचित प्रकार से सुविधायें दी गईं॥ अनेक वीर नित्य आते थे। धनुष उठाते थे, धनुष न उठने पर पछताते हुये लौट जाते थे। श्रीजनकजी का संकल्प था कि एक वर्ष तक धनुर्यज्ञ होगा। इसी अवधि में जो वीर धनुष को तोड़ेगा, उसी के साथ मैथिली का पाणिग्रहण होगा।

इधर श्रीअवध में श्रीरामजी बाललीला कर रहे हैं। शैशवावस्था से चरित्र पर ध्यान दीजियेगा। उसके पूर्व श्रीहनुमानजी की बधाई के पदों का रसास्वादन किया जाये।

❀ श्रीहनुमत जन्म बधाई मंगल पद ❀

परम सोहाई बजत बधाई। मंगल मूरति हनुमत प्रगटे, आज महामंगल जग गाई॥ मंगल कपिकुल सकल सुजन सुख, मंगल अंजनि कोखि सोहाई। 'कृपानिवास' सुमंगल गावत, भक्ति निछावरि बहु विधि पाई॥१॥ आज केशरी भवन बधाई। शुभ लक्षण सुन्दर सुत जायो, बड़ भागिनि भइ अंजनि माई॥ वृद्ध वधू सब जुरि मिलि आई, यथा योग्य कुल रीति कराई। दान मान विप्रन को दीनो, मणि मुक्ता पट भूषणताई॥ मृगनयनी कल कोकिल बयनी, करि शृँगार बैठी अँगनाई। नाम केशरी सुवन अंजनी, गारी गावत परम सोहाई॥ ध्वज पताक तोरण मणिजाला, द्वारन बन्दनवार बँधाई। 'श्रीमतिशरण' करन नवमंगल, जयति जयति सब सुरन मनाई॥२॥ हिय उमगि उमगि हर्षाय बधाई गावो री। श्रीअंजनि गृह जन्म लियो है, श्रीकविवर कपिराय॥ मंगल दिन ग्रह लगन सुस्वाती, मंगल गृह गृह छाय। मंगल कार्तिक मास रास रस, मंगल चौदसि भाय॥ मंगल मूरति आप प्रगट भइ, श्रीसियवर हित आय। मिट्यो अमंगल मूल शूल जन, लंक शंक अकुलाय॥ सुर सुरतिय हिय हरषि सुमनचय, गगन मगन झरिलाय। "युगल विहारिन अवध महल सिय, बाजत आनन्द बधाय॥३॥ कार्तिक मास असित तिथि चौदसि, श्रीहनुमत अवतार लियो। केशरि नन्दन जन मन रंजन, सजि सुख सबहिं दियो॥ शीतल मन्द सुगन्ध पवन चलि, मेघन छाँह कियो। बर्षत पुष्प माल इन्द्रादिक, जय धुनि शब्द कियो॥ नाचति नभ अप्सरा मुदित मन, प्रेम पियूष पियो। चौदह भुवन चराचर दशदिशि, आनन्द हुलसि हियो॥ लंक शंक आनन्द देवगन, जीवन सबहि जियो। 'लालमणी' भवउदधि मगन लखि, बूड़त काढ़ि लियो॥३॥

रेखता पद—बधाई मारुती गावैं। सुमन की माल वर्षावैं। उमा ब्रह्माणि इन्द्रानी। रमादिक गान सुर ठानी॥ बीणा मृदंग सारंगी। विष्णु विधि शिव बहूरंगी॥ गान की तान झरि लावैं। नृत्य को भेद दरशावैं उमगि चले प्रेम सागर से, रसिक हनुमान नागर से॥ कृपा प्रभु दास पर कीजै। 'लाल' को भक्ति वर दीजै॥४॥ रेखता पद-चलो घर केशरी कपि के। बधाई गाइये कसि के॥ नचाइये नाचिये सजि के। लुटाइये मोतियाँ गुथिके॥ कलश ध्वज बन्द पुर सोहैं। देखि सब देव गण मोहैं॥ भाग सम अंजनी को है। नेत्र भरि बाल मुख जोहै॥ मोद भरि गोद दुलरावैं। जनम को लाभ लुटि पावैं॥ 'लालमणि' भक्तिवर पावैं। लाल को जन्म यश गावैं॥६॥ अञ्जनि लालन गोद खिलावैं॥ मूरति मोद विनोद करन प्रिय, हियलावैं हलरावैं। नानाभाँति चरित रघुपतिके, जननी अति-हित गावैं॥ रामनाम अभिराम काम प्रद, सुनि अँग अँग उमगावैं। आनन सम आनन न

आनकहुँ, चतुरानन सकुचावैं ॥ त्रिभुवन के दुख दवन रवन सिय, अति प्रीतम श्रुति गावैं । 'रामवल्लभाशरण' चरण नित, भक्ति अभय वर पावै ॥ ७ ॥ जियै सुत तेरो केशरि रानी ॥ होय सपूत दूत सियवर को, राम रसिक रस सानी । युग युग अलच चलै जग कीरति, जब लगि सुरसरि पानी ॥ सुर बनितादि अशीषत अंजनि, सुनि मन मुदित जुड़ानी । 'विक्रमवल्ली' मधुर विपुलाई, होय न कबहूँ हानी ॥ ८ ॥

आरती पद:-आरति हनुमत पवन कुँवर की । रसिक अनन्य रामव्रत धरकी ॥ सियपति भक्ति सदन सुखसागर । युगल उपासक रस गुणनागर ॥ परम उदार कृपाकी मूरति । शरण सुखद मन वाञ्छित पूरति ॥ मधुर महारस ईश्वर तापर । त्रिगुण पारतम महामहेश्वर ॥ निगमचारि षट कीरति गावैं । ज्ञान योग जप पार न पावैं ॥ कनक वरन तन तेज बिराजै । अद्भुत छवि त्रिभुवन पर छाजै । अवध महल सुख के अधिकारी । प्रेम प्रवाह प्रखत उपकारी ॥ विधि हरिहर सुर मुनि जन जेते । करत आरती हरष समेते ॥ उमा रमा शचि शक्ति भारती । राम सुजन सब करत आरती ॥ जगत ज्योति जग तिमिर विहंडन । श्रीहनुमान प्रान सुख मंडन ॥ बाजैं राग रागिनी जहँ लौं । पद नूपुर ते प्रगट तहाँ लौं । जो यह आरति हिय नित गावैं । रंग महल बसि रसिक कहावैं । समुझि लहैं ते परम उपासी । राम सिया सुख रहत विलासी ॥ 'कृपानिवास' आरती गाई । रीझि कृपाकरि निकट बसाई ॥ ९ ॥ जन्म समय का पद--प्रगटे जग मंगल लोचन पिंगल शालि वरन अनुहारी । पद करतल लोने सारस सोने आनन रवि छविहारी ॥ प्रवसति लखि नन्दन पूरि अनन्दन पवन सुमन झरिकारी । पारस इव रंका लै निज अंका पय प्यावति महतारी ॥ चूमैं चुचुकारैं हरषि दुलारैं हिय लावैं हलराई । अंजनि मन-रंजन सुकृत प्रभंजन केशरि कपि सुखदाई ॥ होइहैं सब लायक जगयश छायक रघुनायक मन भाई । सियपिय पद सँगहि 'मणिरसरंगहिं' प्रेम उमंग लगाई ॥ १० ॥

सीताराम प्रेम रस पागे भक्त सुखद वर परम उदार । भक्त सुखद वर परम उदार पवनसुत सन्तन प्राणाधार । मातु अंजनी गोद खिलौना, श्रीकेशरी केर प्रिय छौना, रूप शील गुणनिधि छवि भौना, मूरति मंजुल मधुर मनोहर मुनिमन सुखदातार ॥ सीता-राम०॥ सहजहिं कोटिन खल मद मर्दक, सीताराम प्रेम रस बर्धक, रसिकन हिय रस रीति विबर्धक, ध्यावत सीताराम रूप हिय भरे परम उद्गार ॥ सीताराम चरित कोइ गावत, तहाँ स्वयं हनुमत चलि जावत, हाथ जोरि तेहि शीश झुकावत । सुनत सुधा ते सरस स्वच्छ सुठि सुयश भरे अति प्यार ॥ जो जन सीताराम सुनावत, वापर अतिसय प्रेम बढ़ावत, स्वयं सतत सियवर यश गावत । पागे प्रेम पियूष परम प्रिय पावन पवन कुमार ॥ सन्तत सीताराम दुलारे, जिनहिं लखत प्रभु होत सुखारे, निर्मल सुयश भुवन विस्तारे । सकल देव नर मुनि यश गावत बोलत जय जयकार ॥ जो सियराम चरित्र सुनावै, हनुमत कृपा सकल फल पावै, ताको नहिं दुख द्वन्द सतावै । पावै सीताराम प्रेम

रस हो भवनिधि से पार ॥ हनुमत कृपा कोर बिन पाये, रति रस रीति न उर में आये, करि जप जोग शरीर सुखाये। आगम निगम भनित बहु साधन करत न पावै पार ॥ हे श्रीसीतापति प्रिय दासा सन्तत सेवत भरे हुलासा, कीजै मम हिय माहिं प्रकाशा। "सीताशरण" कृपा करि दीजै मेरी ओर निहार ॥ सीताराम० ॥ जयति सियराम को प्यारे, दुलारे श्रीपवन नन्दन। सन्त सुख प्रद सतत मंजुल मधुर मूरति पवननन्दन ॥ सकल गुणशील शोभाधाम, अति अभिराम ज्ञान सुघन। अनूपम रूप प्रेम पगे, कोटि मन्मथ सुमद मर्दन। मातु अंजनि के दृग तारे, किये शिशु चरित मनहारे। कुतूहल वश भानु भक्षेउ, पढ़े श्रुति शास्त्र सुकुमारे ॥ कीन सुग्रीव की रक्षा, कराई भेंट रघुवर से। बनाकर मित्र सियवर का, दिलायो राज छविधर से। गये प्रमुदित हृदय लंका, विभीषण से मिले जाकर। सुनायो शीलगुण प्रभु के, भक्तवात्सल्य निधि रघुवर ॥ निकट श्रीजानकी के जा, चरित रघुवीर के गाये। मिटाये ताप सिय हिय के, विमल बरदान बहु पाये ॥ कियो बन ध्वंश रावण को, अनेकन वीर भट मारे। घटायो गर्व दशमुख को, मुदित लंका नगर जारे ॥ गये सन्देश लै सियका सुनायो जाय रघुवर को। लगायो कण्ठ हँसि प्रभु ने खिलायो कमल तब उर को ॥ भयो जब युद्ध लंका में, विपुल खल दल समर मारे। बचाये प्राण लक्ष्मण के करत सुर सन्त जयकारे ॥ दशानन बध विजय रघुवीर की, सिया को सुनाई जब। भई श्रीमैथिली प्रमुदित, सुआशिरबाद दीनो तब ॥ कराई भेंट प्रभु सिय की, सँदेशा भरत को दीना। मिटाये सोच सब हिय के, चरित वर्णन सकल कीना ॥ भये सीतारमण राजा, पुजारी नित बने हनुमत। कृपाकी कोर लहि "सीताशरण" कर जोरि नित विनवत ॥१२॥

आरति अंजनि लाल की कीजै। मूरति मधुर निरखि सुख लीजै ॥ सीताराम प्रेम रस पागे, जपत नाम हिय अति अनुरागे, सुमन वृष्टि प्रमुदित मन कीजै ॥ आरति करिये हिय उमगाई, अनुपम छवि निज दृगन बसाई, निशिदिन परम प्रेम रस भीजै ॥ श्रीहनुमान आरती गाई पावत सुख सुरमुनि समुदाई, "सीताशरण" प्रेम रस पीजै ॥ आरति० ॥ १३ ॥ आरती अंजनि लाला की। भक्तवर रूप रसाल की ॥ पवन सुत भक्तन हितकारी, मनोहर मूरति अति प्यारी। सतत सन्तन प्रतिपाला की ॥आरती०॥ सर्वदा सुमिरत सीताराम, हृदय में ध्यावत सुषमाधाम। अरुणतन नैन विशाला की ॥ सुनावत जो सियराम चरित्र, करत वाको हिय परम पवित्र। जयति जय दीनदयाला की ॥ सुनावै जो कोइ सीताराम, देत वाके मन अति अभिराम। सुहृदतम परम कृपाला की ॥ कथामृत पीवत अति सुख पाय, जोरि दोनोंकर शीश झुकाय। प्रेम पगि प्रभु जगपाला की ॥ हृदय बिच हुलसत सिय रघुवीर, कृपाकरि हरत स्वजन भवभीर। हरन सब विधि जग-जाला की ॥ सौम्य अति मूरति सुखकारी, हृदय बिच विहरत धनुधारी। मोद मंदिर छविजाला की ॥ सुछवि लखि "सीताशरण" सिहाय, सुमन वर्षावत आनँद पाय। जयति जय कहि सुरपाला की ॥ आरती० ॥

❀ जगतगुरु अनन्त श्रीस्वामी रामानन्दाचार्यजी के बधाईपद ❀

आज परममंगल द्विजवर घर हरि नर को अवतार लिये । माघ मास शुचि पाख असित तिथि, सातैं चित्रा नखत भये ॥ कुम्भ लग्न शुभासिद्धि योग ग्रह, बार विमल अनुकूल भये ॥ सुनि सुत जन्म भूरि कर्मा तब, सकल याचकन दान दये ॥ जात कर्म करि महामुदित मन, गुरुकुल वृद्धन चरन नये । भाग निधान प्रयाग निवासी, सब आये अनुराग ग्ये ॥ मंगल थार गहे तिनकी तिय, आईं उरन उछाह छये । लखि सुन्दर सुत न्यौछावरि करि, समय सोहावन गान ठये ॥ बजत बधावन नचहिं नागरी, अंगन भाव देखाय नये । कहि न जात तेहि अवसर को सुख, सबके सब दुख बिसरि गये ॥ तब कैसे अजहूँ विचरहिं जे, आचारज उत्सब नितये । ते तरिहैं "रसरंगमणी" भव, रामानन्द कृपा चितये ॥ १ ॥ पद रेखता—बधाई गाइये प्यारी । जन्म आचार्य सुखकारी ॥ भनै को भाग द्विजवर को । लुटावैं सम्पदा घर को ॥ चलीं सब प्राग की नारी । सजे मंगल लिये थारी ॥ लखें शिशु सोहिलो गावैं । सबै सन्मान सुख पावैं । दुवारे नौबतें बाजें नचैं तिय त्यागि के लाजें ॥ पुरोहित कुण्डली साधैं । करैं नन्दी मुखी श्राधैं ॥ गगन ते सुर सुमन बरषैं । धरम रक्षक समुझि हरषैं ॥ हरी अवतार आरामी । श्रीरामानन्द गुरु स्वामी ॥ मन्त्र तारक सुगम मग से । उधारे जीव कलियुग से ॥ अजहुँ उत्सब जनम दिनको । रचैं जे धन्य है तिनको ॥ गहे प्रभु सम्पदा शरणैं । सुयश 'रसरंगमणि' बरणैं ॥२

आचारज को जन्ममहोत्सव, गावत सन्त बधाई ॥ मास पाख दिन तिथी नखत ग्रह, मंगल साज सजाई । बन्दनवार वितान कलश ध्वज, मोतियन चौक पुराई ॥ नाचैं गावैं रस उपजावैं, बाजै विविध बजाई । राग रागिनी छाय रह्यो है, आनन्द हिय उमगाई ॥ नभ बिमान सुर थंकित रहे हैं, सुमनमाल बरषाई । बन्दी मागध सूत सु जाँचक बरणत गुण सुघराई ॥ दान मान न्युछावरि अगणित, पावत सबहिं अघाई । केलि कोलाहल कौतुक देखत, देह दशा बिसराई ॥ कबहुँ पालने झूलत किलकत, गावति मंगल माई । चिरजावैं श्री सतगुरु प्यारे "प्रेम मोद" मन भाई ॥ ३ ॥ प्रगटे सुखसार आचारज हितकारी । महिना माघ को पावन, परम मन भावन, सनेह बढ़ावन । हरने महिभार आचारज हितकारी ॥ सातैं असित पख आई, सन्त सुखदाई, लगन भल पाई । दिन मंगलवार आचारज हितकारी ॥ प्रमुदित प्रयाग निवासी, हृदय में हुलासी, दास अरु दासी । भरे अति उद्गार आचारज हितकारी ॥ हरषित बधाई गावैं, सुबाद्य बजावैं, नटत सुख पावैं । पुरजन भरि प्यार आचारज हितकारी ॥ सुन्दर चौक पुरवाई, कलश धरवाई, सुदीप जलाई । गावैं मंगलचार आचारज हितकारी ॥ सुरगन स्वर्ग ते आये, सुबाद्य बजाये, सुमन बरषाये । कहि जय जयकार आचारज हितकारी ॥ माता पिता हरषावैं, सुदान लुटावैं, परम सुख पावैं । को कहि लहै पार आचारज हितकारी ॥ द्विज गण सुवेद सुनावैं, सुकृत्य करावैं, मोद मन पावैं । लहिदान अपार आचार हितकारी ॥

"सीताशरण" उमगाई, बधाई गाई, सनेह समाई । सन्तत बलिहार आचारज हित-कारी ।। प्रभु की बधाई गावै, जनम फल पावै, सजन घर जावै । हो भवनिधि पार आचारज हितकारी ।। ४ ।।

सोहर पद—श्रीसतगुरु सुखसागर परम उजागर हो । ललना प्रगटे जगहित हेतु सुक्षिति नवनागर हो ।। जोग लगन ग्रह बार नखत भल सोहै हो । ललना-मास पाख छविखानि देखि मन मोहै हो ।। बाजन लागि बधाई सुपरम सोहाई हो । ललना-नाचैं गावैं राग तान नभ छाई हो ।। देव बिमानन आइ निशान बजावैं हो । ललना-जय जयकार सुनाय सुमन झरि लावैं हो । तात मात हिय हरष न कछु कहि आवै हो । ललना निरखि निरखि सुत वदन सुभाग मनावैं हो ।। जो यह सोहिलो गावहिं हिय उमगावहिं हो । ललना-श्रीसदगुरुढिग वास रूप निज पाववहिं हो ।। श्रीसदगुरु पद कमल भक्ति मन भावनि हो । ललना " प्रेम मोद " रस खानि भाव सुख छावनि हो ।। अब पाठक गण पुनः श्रीराम जी के बाल चरित्र से लगातार ब्याह पर्यंत लीला का रसा-स्वादन करें :—

श्रीरामजी का बालचरित्र :--चौ०:-एक बार जननी अन्हवाए । करि सिंगार पलना पौढ़ाये ।। निज कुल इष्टदेव भगवाना । पूजाहेतु कीन स्नाना ।। करि पूजा नैवेद्य चढ़वा । आप गई जहँ पाक बनावा ।। बहुरि मातु तहवाँ चलि आई । भोजन करत दीख सुत जाई ।।

इस आश्चर्यमयि लीला को देखकर माताजी डरती हुई बालक रूप श्रीरामजी के पास गईं, तो देखा कि श्रीरामजी सो रहे हैं । पुनः आकर देखा तो वही बालक मन्दिर में भोजन पा रहा है, जो पलना में सो रहा है । इहाँ मन्दिर में और वहाँ पलना में एक समान दो बालक देखकर हृदय काँपता है, मन में धैर्य नहीं होता । माताजी मन में सोचती हैं कि मेरी बुद्धि में भ्रम हो गया है, अथवा कोई विशेष कारण । देवमाया है माताजी की ऐसी विचित्र स्थिति देखकर श्रीरामजी मन्द मन्द मुसुकाने लगे । और दो०-देखरावा मातहिं निज अद्भुत रूप अखंड । रोम रोम प्रति लागे कोटि कोटि ब्रह्मण्ड ।। माताजी ने श्रीरामजी के विराटरूप में अनेक सूर्य चन्द्र शिव ब्रह्मा इत्यादि देवता तथा अनेक पर्वत नदी समुद्र पृथ्वी बन काल कर्म गुन ज्ञान सुभाउ को देखा और—देखी माया सब विधि गाढ़ी । अति सभीत जोरे कर ठाढ़ी ।। देखा जीव नचावै ताही । देखी भगति जो छोरै ताही ।। तन पुलकित मुख बचन न आवा । नयन मूदि चरणन शिर-नावा ।। विसमयवन्त देखि महतारी । भये बहुरि शिशु रूप खरारी ।। स्तुति करि न जाय भय माना । जगत पिता मैं सुत करि जाना ।।

जब माताजी ने कहा कि मैंने जगतपिता को अपना पुत्र करके समझा, तब श्रीरामजी ने कहा कि—हे माताजी ! यह बात कि-मैं जगत पिता हूँ, कभी भी किसी से

नहीं कहना । मैं तो आपका बालक हूँ। आप मेरी माता हैं । किन्तु माताजी तो विराट रूप देख चुकी थीं इसलिये, बार-बार कौशिल्या विनय करै कर जोरि। अब जनि कबहूँ ब्यापै प्रभु मोहिं माया तोरि ॥ जब श्रीरामजी ने कहा कि हे माता जी आप कभी भी किसी से न कहना कि हमारे पुत्र जगतपिता हैं, तब माताजी ने कहा कि मैं न कहूँगी। किन्तु आज से आप भी अपनी माया का विस्तार (विराट रूप) नहीं दिखाइयेगा। यदि आप इसी प्रकार हमें बार-बार विराट रूप दिखलायेंगे, तो मैं भी सबसे कहूँगी कि हमारे लालजी बड़े जादूगर हैं । कभी अनेक रूप हो जाते हैं । कभी बालक बन जाते हैं । कभी बड़े हो जाते हैं। तब श्रीरामजी ने कहा कि—

कवित्त—अंशकला औ विभूति भोग ना चढ़ति मोहिं, प्रथम खवावै फेरि मोहिं को खवावै तू। ऐसी अनुचित फेरि कबहूँ न करीजै मातु, कबहूँ यह बात नहिं और को जनावै तू ॥ रँग श्री हमारे जो प्रथम अनादि अंश, अक्षत हमारी कला और को ध्यावै तू। ना तो हम प्रथम ही जूठो करि दइहौं भोग, मेरे ही में रंग जू को देखि ना भुलावै तू ॥

श्रीरामजी ने कहा कि—हे माताजी ! आप मेरी ही कला अंश रूप श्रीरंगनाथ जी इत्यादि को प्रथम भोग लगाकर तब वही प्रसाद मुझे पवाती हो । यह अनुचित है । ऐसा कभी भी नहीं करना, और मेरा विराट रूप दिखलाना भी किसी को नहीं बतलाना तदुपरान्त माताजी पुनः प्रभु के माधुर्य भाव विभोर वात्सल्य रस का रसास्वादन करने लगीं। श्रीरामजी कुछ बड़े हुये, तब चारों भाई आँगन में घुटुरुअन चलते हुये खेलने लगे ॥ गीतावली पद नं० २६ ॥ भूमितल भूपके बड़भाग । रामलखन रिपु दवन भरत शिशु, निरखत अति अनुराग ॥ बाल विभूषण लसत पायँ मृदु, मंजुल अंग विभाग । दशरथ सुकृत मनोहर विरवनि रूप करह जनुलाग ॥ राजमराल विराजत विहरत, जे हर हृदय तड़ाग । ते नृप अजिर जानु कर धावत, धरन चटक चल काग ॥ सिद्ध सिहात सराहत मुनिगन, कहैं सुर किन्नर नाग। 'है वरु विहंग विलोकिय बालक, बसि पुर उपवन बाग ॥ परिजन सहित राय रानिन कियो मज्जन प्रेम प्रयाग। "तुलसी" फलताके चार्यो मनि, मरकत पंकज राग ।४०। इस प्रकार मंगलमयि लीलाकरते हुये श्रीरामजी कुछ और बड़े हुए, माताजी अंगुली पकड़कर चलाना सिखाती हैं। गीतावली पद नं० ३२ – ललित सुतहिं लालति सचु पाये । कौसल्या कल कनकअजिर महँ सिखवति चलन अँगुरियाँ लाये ॥ कटि किंकिणी पैंजनी पाँयनि बाजति रुनझुन मधुर रेंगाए। पहुँची करनि कण्ठ कठुला बन्यो, केहरि नख मनि जरति जराये ॥ पीतपुनीत विचित्र झँगुलिया, सोहति श्याम शरीर सोहाये । दतियाँ द्वै द्वै मनोहर मुख छवि, अरुणअधर चितलेत चोराये ॥ चिवुक कपोल नासिका सुन्दर,भाल तिलक मसिबिन्दुबनाये। राजत नयन मंजु अंजनयुत,खंजन कंज मीन मदनाये ॥ लटकन चारु भृकुटिया टेढ़ी, मेढ़ी सुभग सुदेश सुभाये। किलकि किलकि नाचत

चुटकी सुनि, डरपति जननि पानि छुटकाये ॥ गिरि घुटु सवन टेकि उठि अनुजनि तोतरि बोलति पूप देखाये। बालकेलि अवलोकि मातु सब, मुदित मगन आनँद न अमाये ॥ देखत नभ घनओट चरित मुनि, जोग समाधि विरति बिसराये। तुलसिदास जे रसिक न यह रस, ते नर जड़ जीवत जग जाये ॥ ४२ ॥ भगवान् श्रीरामजी की बालक रूप की झाँकी कवितावली पद नं० २, ३, ४, ५ सवैया—

पग नूपुर औ पहुँची कर कंजनि मंजु बनी मणिमाल हिये।
नव नील कलेवर पीत झँगा झलकै पुलकैं नृप गोद लिये ॥
अरविन्द सो आनन रूप मरन्द अनन्दित लोचन भृँग पिये।
मन में न बस्यो अस बालक जौं तुलसी जग में फल कौन जिये ॥१॥
तन की दुति श्याम सरोरुह लोचन कंज की कोमलताई हरैं।
अति सुन्दर सोहत धूरि भरे छबि भूरि अनंग की दूरि करैं ॥
दमकें दँतियाँ दुति दामिनि ज्यों किलकैं कल बाल बिनोद करैं।
अवधेश के बालक चारि सदा तुलसी मन मन्दिर में बिहरैं ॥२॥
कबहूँ शशि माँगत आरि करैं कबहूँ प्रतिबिम्ब निहारि डरैं।
कबहूँ करताल बजाय के नाचत मातु सबै मन मोद भरैं ॥
कबहूँ रिसिआइ कहैं हठि के पुनि लेत सोई जेहि लागि अरैं।
अवधेश के बालक चारि सदा तुलसी मन मन्दिर में बिहरैं ॥३॥
बरदन्त की पंगति कुंदकली अधराधर पल्लव खोलन की।
चपला चमकैं घन बीच जगै छबि मोतिन माल अनमोलन की ॥
घुँघुरारी लटैं लटकैं मुख ऊपर, कुंडल लोल कपोलन की।
नेवछावरि प्राण करैं तुलसी बलि जाउँ लला इन बोलन की ॥४॥

कछुक काल बीते सब भाई। बड़े भये परिजन सुखदाई ॥ चूड़ा करन कीन गुरु जाई। विप्रन पुनि दछिना बहु पाई ॥ परम मनोहर चरित अपारा। करत फिरत चारिउ सुकुमारा ॥ मन क्रम बचन अगोचर जोई। दशरथ अजिर विचर प्रभु सोई ॥ भोजन करत बोल जब राजा। नहिं आवत तजि बाल समाजा ॥ कौसल्या जब बोलन जाई। ठुमुकि ठुमुकि प्रभु चलैं पराई ॥ निगम नेति शिव अन्त न पावा। ताहि धरै जननी हठि धावा ॥ धूसर धूरि भरे तन आये। भूपति बिहँसि गोद बैठाये ॥ दो०-भोजन करत चपल चित इत उत अवसरु पाइ। भाजि चले किलकत मुख, दधि ओदन लपटाइ ॥ वार्ता—इस प्रकार शिशु लीला करते हुये श्रीरामजी कुछ और बड़े हुये, तो राजमहल के बाहर सड़कों तथा गलियों में अपने भाई एवं सखाओं के साथ खेलते हुये चले जाते

थे। गीतावली पद नं०-४३— ललित ललित लघु लघु धनुशरकर, तैसी तरकसी कटि कसे पट पियरे। ललित पनहीं पायँ पैजनी किंकिनि धुनि, सुनि सुख लहे मन रहे नित नियरे॥ पहुँची अंगद चारु हृदय पदिकहारु, कुण्डल तिलक छवि गड़ी कवि जियरे। शिरखिटिपारो लाल नीरज नयन विशल, सुन्दर बदन ठाढ़े सुर तरु नियरे॥ सुभग सकल अंग अनुज बालक संग, देखि नर नारि रहैं ज्यों कुरंग दियरे। खेलत अवध खोरि गोली भौंरा चक डोरि, मूरति मधुर बसै तुलसी के हियरे॥ ४३।, उसके बाद— भये कुमार जबहिं सब भ्राता। दीन जनेऊ गुरु पितु माता॥ गुरु गृह गये पढ़न रघुराई अलप काल विद्या सब आई॥ जाकी सहज स्वाँस श्रुति चारी। सोउ हरि पढ़ यह कौतुक भारी॥ विद्या विनय निपुन गुनशीला। खेलहिं खेल सकल नृप लीला॥ करतल बान धनुष अति सोहा। देखत रूप चराचर मोहा॥ जिन बीथिन बिहरहिं सब भाई। थकित होहिं सब लोग लुगाई॥ दो०—कोशलपुर वासी नर नारि बृद्ध अरु बाल प्राणहुँ ते प्रिय लागत सब कहँ राम कृपाल॥ ॥ कभी कभी श्रीरामजी भाइयों के साथ सखाओं को लेकर श्रीसरयूजी के तट पर खेल खेलते हैं। गीतावली पद नं० ४५— रामलखन इक ओर भरत रिपुदवन लाल इक ओर भये। सरजू तीर सम सुखद भूमि थल, गनि गनि गुइयाँ बाँटि लये॥ कन्दुक केलि कुशल हय चढ़ि चढ़ि, मन कसि कसि ठोंकि ठोंकि खये। कर कमलनि बिचित्र चौगाने, खेलन लगे खेल रिझाये॥ व्योम बिमाननि बिबुध विलोकत, खेलक पेखक छाँह छये। सहित समाज सराहि दशरथहिं, बरषत निज तरु कुसुमचये॥ लै लै बढ़त एक फेरत सब, प्रेम प्रमोद विनोद मये। एक कहत भइहार रामजू की, एक कहत भैया भरत जये। प्रभु बकसत गजबाजि बसन मणि, जय धुनि गगन निशान हये। पाइ सखा सेवक जाचक भरि, जनम न दुसरे द्वार गये॥ नभपुर परति निछावरि जहँ तहँ, सुरसिद्धनि बरदान दये। भूरि भाग अनुराग उमगि जे गावत सुनत चरित नित ये॥ हारे हरष होत हिय भरतहिं, जिते सकुच शिर नयन नये। तुलसी सुमिरि सुभावशील, सुकृती तेइ जे येहि रंग रये॥ ४४॥

इस प्रकार बाल क्रीड़ा करते हुए श्रीरामजी सरयूतट के बनों में आखेट लीला करने लगे। चौ०:- बन्धु सखा सँग लेहिं बोलाई। बन मृगया नित खेलहिं जाई॥ पावन मृग मारहिं जिय जानी। दिन प्रति नृपहि देखावहि आनी॥ जे मृग रामबाण के मारे। ते तन तजि सुरलोक सिधारे॥ अनुज सखा सँग भोजन करहीं। देखि सकल जननी सुख भरहीं॥--कुछ मांस प्रिय व्यक्ति इसी प्रसंग में कहा करते हैं कि श्रीरामजी भी शिकार करके मांस खाते थे। परन्तु यह उनका सर्वथा अनर्गल प्रलाप है। क्योंकि यहाँ पर स्पष्ट लिखा है कि-अनुज सखा सँग भोजन करहीं। अर्थात् मानव का भोज्य पदार्थ का भाव है। शास्त्रों में महर्षियों ने मांस खाना निषेध लिखा है। मांस को अखाद्य पदार्थों में कहा है। खाद्य में नहीं। मानव का खाद्य पदार्थ--दूध, अन्न, साग,

फल, कन्द, मूल है, इनमें भी कुछ दूध अन्न साग फल कन्दमूल भी निषेध है। तब श्रीरामजी को मांस खाना कहना, केवल कोरा पागलपन ही है, और कुछ नहीं। भगवान् श्रीरामजी का अवतार धर्म की रक्षा के लिए हुआ है, तब मांस भक्षण जैसा अधर्मकृत पापमय आक्षेप करना मांस भक्षण प्रिय बुद्धि जीवी कहलाने वाले बुद्धि के दरिद्रों का ही काम है। बुद्धिमानों का नहीं। अब कवितावली के एक सवैया सरयूतट की एक झाँकी का रसानुभव करिये--

सरयूवर तीरहि तीर फिरें, रघुबीर सखा अरु बीर सबै। धनुहीं करतीर निषंग कसे कटि पीतदुकूल नवीन फबै॥ तुलसी तेहि औसर लावनिता दशचारि नौ तीन इकीश सबै। मति भारति पंगुभई जो निहारि बिचारिफिरी उपमा न पबै॥

चौ०--विश्वामित्र महामुनि ज्ञानी। बसहिं बिपिन शुभ आश्रम जानी॥ तहँ जप जज्ञ जोग मुनि करहीं। अति मारीच सुबाहुहिं डरहीं॥ विश्वामित्र जी जैसे यज्ञ करना प्रारम्भ करते थे, धुआँ देखते ही निशाचर दौड़कर आजाते थे फिर यज्ञशाला में उपद्रव कर देते थे, जिससे मुनि को महान दुख होता था। चौ०—गाधि तनय मन चिंता व्यापी। हरि बिन मरैं न निशिचर पापी॥ वार्ता--तब मुनिराज ने अपने मन में विचार किया कि इस समय प्रभु ने कृपा करके पृथ्वी का भार उतारने के लिए रघुकुल में अवतार धारण किया है। अस्तु मैं इसी यज्ञ रक्षा के बहाने जाकर उन पूर्णतम ब्रह्म श्रीरामजी के चरणों का दर्शन करूँ, और स्तुति प्रार्थना करके श्रीरामजी एवं श्रीलक्ष्मण जी दोनों भाइयों को अपने आश्रम में ले आऊँ, तो मुझे उन परम प्रभु का दर्शन भी और यज्ञ की पूर्ति भी हो जायेगी॥ चौ० -ज्ञान विराग सकल गुण अयना। सो प्रभु मैं देखब भरि नयना॥ वार्ता--इस प्रकार मन में अनेक मनोरथ करते हुये अपने तपोवन से श्रीअवध को प्रस्तान किया, भगवद्दर्शन की उत्कण्ठा के कारण मार्ग का समय बहुत स्वल्प मालूम पड़ा। श्रीसरयूजी में स्नान करके चक्रवर्ति सम्राट श्रीदशरथजी के दरबार में पधारे।

<u>मुनि आगमन</u>—चौ०--मुनि आगमन सुना जब राजा। मिलन गयो लै विप्र समाज॥ करि दण्डवत मुनहि सनमानी। निज आसन बैठारिन आनी॥ चरण पखारि कीन अति पूजा। मोसम भागवन्त नहिं दूजा॥ विविध भाँति भोजन करवावा मुनिवर हृदय हरष अति पावा॥ पुनि चरणन मेले सुत चारी। राम देखि मुनि देह बिसारी॥ भये मगन देखत मुख शोभा। जनु चकोर पूरन शशि लोभा॥ वार्ता--तब श्री चक्रवर्ति जी महाराज ने हाथ जोड़कर प्रसन्न चित्त से निवेदन किया कि--चौ०-केहि कारण आगमन तुम्हारा कहहु सो करत न लौवौं वारा॥

सवैया--मुनिनायक कीन कृपा अतिसय, बड़भाग हमार उदय भयो आजू। **परसे पद पंकज के रजके, सब पाप छयो मैं समस्त समाजू॥ हे प्रभो! कीनी दया**

अस काहु नहीं, जो अनुग्रह आज कियो महराजू । कारण कौन कियो इत गौन, जो आयसु होइ करौं सोइ आजू ॥५॥

तब श्रीविश्वामित्रजी ने श्रीदशरथजी से कहा कि--[कवित्त]-विदित वसुन्धरा विभाकर विशुद्धवंश, वन्दित वसुन्धरा धिराजन सों सर्वदा। सगर दिलीप अम्बरीष अंशुमान अज, जैसे भये तैसे आप भुवन के शर्मदा ॥ "रघुराज" रावरे को भाषिवो न आश्चर्य, परम प्रताप देवराज हू को भर्मदा । जाके हैं वशिष्ठ से सदैव उपदेश वारे, ताके बैन विप्रन के धर्म कर्म वर्मदा ॥ १ ॥ चौ०-असुर समूह सतावहिं मोही। मैं जाचन आयों नृप तोही ॥ अनुज समेत देहु रघुनाथा । निशिचर बध मैं होब सनाथा ॥ सवैया- मोहिं सतावत दुष्ट निशाचर, याचन आयो हौं राजन तोही। सानुज रामलला सुत आपन, दीजै कृपाकरि माँगन मोही ॥ संग मेरे मम आश्रम जाय, बधैं दोउ बीर निशाचर कोही। होव सनाथ जबहिं हम नाथ, तुमहिं अति धर्म इनहिं सुख होई ॥ ६ ॥ कवित्त--नीरद बरण वारो पंकज नयन वारो, भृकुटी विशाल वारो लम्बभुजवारो है। पीत पट कटिवारो मन्द मुसुकान वारो, शूर सरवारो रण कबहूँ न हारो है ॥ 'रघुराज" रावरे को रोज रोज प्राण प्यारो, ज्वालिम जुलुफ वारो कौशिला दुलारो है। माँगनो हमारो होय मेरो मख रखवारो, रामनाम वारो जेठोतनय जो तिहारो है ॥ २ ॥ पद-- राजन ! रामलखन जो पाऊँ । सकल भुवन में भूप मुकुटमणि, यश रावरो बढ़ाऊँ॥ नाम सुकेतु ताहि का दुहिता, प्रबल ताड़का नाऊँ । तासु तनय मारीच सुभुज अति, दुष्ट कहाँ लगि गाऊँ ॥ करन न देत यज्ञ नृप मोकहँ, चलत न नेक उपाऊँ । करत विघ्न अति धाइ धाइ नृप, करउँ यज्ञ केहि ठाऊँ ॥ ये बलवान मारिहैं इनको, जग हो प्रगट प्रभाऊँ । "शंकर" दानि शिरोमणि हो तुम, और कहाँ मैं जाऊँ ॥ ४७ ॥

विश्वामित्रजी के ऐसे बचन सुनकर वात्सल्य भाव विभोर होकर हाथ जोड़-कर श्रीदशरथजी बोले— चौ:- चौथे पन पायउँ सुत चारी । विप्र बचन नहिं कहेउ विचारी ॥ प्रभो ! यदि आप मेरे प्राणाधिक प्रिय इन पुत्रों के अतिरिक्त--माँगहु भूमि धेनु धन कोसा । सर्वस देउँ आज सहरोसा ॥ इस स्थल पर सहरोसा शब्द का अर्थ होगा कि प्रसन्नता पूर्वक । अस्तु हे प्रभो ! इन मेरे नयनों के तारे परम सुकुमारे बालकों को छोड़कर यदि आप कहें तो--देह प्राण ते प्रिय कछु नाहीं । सोउ मुनि देउँ निमिष एक माहीं ॥ भगवान यद्यपि--सब सुत प्रिय मोहिं प्राण की नाईं । तथापि यदि आप श्रीरामलला के अतिरिक्त अन्य किसी को माँगते, तो किसी भी प्रकार जैसे तैसे धैर्य धारण करके आपकी बात पर कुछ विचार भी किया जा सकता था। किन्तु किसी भी प्रकार राम देत नहिं बनइ गोसाईं ॥ अस्तु हे प्रभो ! आप मुझपर कृपा ही किये रहिये । आप तो त्रिकालज्ञ सर्वज्ञ हैं, आप यह भली भाँति समझ रहे हैं कि--श्रीराम ही मेरे प्राण हैं, यही मेरी आत्मा हैं, इसलिये--(पद) भगवन् रामलखन नहिं दइहौं। जीवन प्राण

सुवन मेरे प्रभु, तिनहिं देत दुःख पइहौं ॥ आयसु होय नाथ अबहीं मैं, सैन सहित प्रभु जइहौं। "मधुरअली" सब मारि निशाचर, विमल यज्ञ करवइयौं ॥ ४६ ॥ कवित्त--मैं ही सैन साजि चलौं साथ मुनिनाथजू के, सँग लैके शूर सबै संगर जुझारहैं। राक्षस प्रबल कहाँ इन्द्र लौं डरात जिन्हैं, कहाँ ये बालक सिरस हू ते सुकुमार हैं॥ आपही विचारि देखो "ललिते" हिये में नेक, हंस सुत मन्दर को कैसे सहैं भार हैं। माँगिये सँभारि प्रभो! बार बार गहौं पग, राम ही कुमार मेरे प्राण के अधार हैं ॥ ३ ॥

सवैया--माँगहु धेनु औ धाम धरा, धन माँगहु देत न बार करैंगे। साजिके सैन सबै संग लै, खल राक्षस सों मुनिराज लरैंगे ॥ किन्तु प्रभो ये तो अभी-- बालक हैं कछु जानत नाहिं, कहो मुनि युद्ध में कैसे अरैंगे। प्राण ते प्यारे सबै सुत हैं, पर राम वियोग न धीर धरैंगे ॥ ७ ॥ तब विश्वामित्रजी महाराज श्रीदशरथजी को समझाते हुए पुनः बोले कि---(पद)--राजन राम लखन जो दीजै। यश रावरो लाभ ढोटन को, मुनि सनाथ सब कीजै ॥ डरपत हो झूठहिं सनेह बश, सुत प्रभाव नहिं जाने। बूझिय बामदेव अरु कुल गुरु, तुम प्रिय परम सयाने ॥ रिपु रण दलि मख राखि कुशल पुनि लौटि भूप गृह आइहैं। "तुलसिदास" रघुवंश तिलक को, कवि कुल गौरव गइहैं ॥४७॥ दो०--दानि न हेरत हानि कछु, दान देत हर्षात। तनिक बात में भूप तब सबै गात थहरात ॥ मुनिराज के वचन सुनकर श्री दशरथ जी मस्तक नत (नीचे को झुकाकर) करके बोले कि-- [कवित्त]--सुनिये रिषिराज महाराज ज्ञानवान आप, बालक हमारे ये प्राणहूँ ते प्यारे हैं। अबहीं मिलि बाल वृन्द करते हैं बाल केलि, युद्ध काह जानैं अभी दूध मुखवारे हैं ॥ माता की सुअंक माहि खेलत समोद अबहिं, सकल अवधवासिन के नैन उजियारे हैं। ये हो "गुणशील" क्षमा धाम सुखददासन को, पुत्रन तजि नाथ पर सर्वस हम वारे हैं ॥ ४ ॥ वार्ता--श्रीदशरथजी के इस प्रकार प्रेम भरे वचन सुनकर विश्वामित्रजी हँसकर बोले--दो०-राज राज रघुवंशमणि, चित कत करत खभार। रण प्रवीण सुत रावरे, मेरे प्राण अधार ॥ छंद--मेरे प्राण अधार नृपति दोउ तनय तुम्हारे। सुष सुखमा आगार शीलगुणगण उजियारे ॥ ये सब भाँति समर्थ परम बलवान सुजाना। जगदाधार परेश राम श्रुति शास्त्र बखाना ॥ दो०-याते नृप अब मोह तजि, पठवहु मेरे साथ। निशिचर गण संहार हो हम सब होहिं सनाथ ॥ वार्ता-- यद्यपि विश्वामित्र ने संकेत से श्रीराम का ऐश्वर्य प्रगट किया, किन्तु वात्सल्याधिकता के कारण महाराज को तो श्रीरामजी अभी परम सुकुमार बालक ही दीख रहे हैं। अस्तु राजा ने कहा कि हे मुनिराज आप जो भी कहिये, किन्तु मेरी प्रार्थना सुनिये। चौ० -कहँ निशिचर अति घोर कठोरा। कहँ सुन्दर सुत परम किशोरा ॥ और--दो०--अतिसय मायावी प्रबल, निशिचरगण बलवान। तिनसों युद्ध न करि सकैं, ये बालक नादान ॥ चौ०-सुनि नृप गिरा प्रेम रस सानी। हृदय हरष माना मुनि ज्ञानी ॥ दो०--ऊपर से अति रुष्ट सम,

बोले वचन रिसाय। प्रथम कहा क्यों देन को, अब किमि रहे डराय॥ यदि सुत देना था नहीं, प्रथमहिं देत बताय। मुनिवर माँगिय पुत्र तजि, जो कछु तुमहिं सोहाय॥ छंद तो याचक नहिं बनत,सहत दुख विपिन सिधाई। किन्तु करी नृप भूल महादानी कहलाई॥ अब यदि देत न भूप हमहिं दोउ पुत्र सुखारी। तो तुव कुशल न होय लेहु मनमाहिं विचारी॥ वार्ता - राजन आप खूब सोच लीजिये, मैं द्वार द्वार भीख माँगने वाला भिक्षुक नहीं हूँ। मेरे तेज प्रभाव एवं स्वभाव को आप के गुरुदेव ये वशिष्ठ जी भली भाँति जानते हैं। आप तो श्रीरामजी को केवल अपना पुत्र ही मानते हैं। परन्तु श्रीरामजी कौन हैं, इनमें क्या सामर्थ है इसे मैं अच्छी तरह जानता हूँ, और ये वशिष्ठ भी जानते हैं। तुम तो मोह में फँसे हो। अस्तु अब मैं जाना चाहता हूँ, यदि आप अयोध्या के राज्य समेत अपनी कुशल चाहते हैं, तो दोनों पुत्रों को मेरे साथ भेज दो, अन्यथा मैं क्या नहीं कर सकता हूँ, यह वशिष्ठजी से पूछ लो। मुनि के क्रोध पूर्ण वचनों को सुनकर— कवित्त--कोमल कमल पै तुषार को तोपात जैसे, नवलतिका पै ज्यों दमारि दीह ज्वाल है। जैसे गजराज पै गराज मृगराज केरी, पूर्ण महराज पै ज्यों सिंहिका को लाल है। भनै 'रघुराज' रघुराज को विरह जानि, मुख पियराय गयो कोश लभुआल है। परम कसाला पाय ह्वै के बिहाला अति, गिरि गयो सिंहासन सों भूमि भूमिपाल है॥ दो०-नृप की दशा विलोकि तब, सेवकगण अकुलाय। सुमन बिजन हाँकन लगे, सुरभित जल छिरकाय॥ यहि विधि बीते दण्ड दो, उठेउ नृपति धरि धीर। प्रेम विवश मुनि सन कहत, कम्पत सकल शरीर॥ कवित्त--बूढ़े भये ज्ञानी भये तपसी विख्यात भये, राजऋषि हूते ब्रह्मऋषि तुम ह्वै गये। विमल विरागी भये जगत के त्यागी भये, विश्व बड़भागी भए, विषय उर ना नये॥ भनै "रघुराज" भगवान भक्तिवान भए, महाधर्मवान सत्यवान जग ज्वै गये। तमा में अछेह क्षमामान भये काहे मुनि, मेरे छोहरा पै तुम दयावान ना भये॥ ५॥

यह सुनकर विश्वामित्रजी बोले कि— ठीक है राजन, आपका वंश सर्वदा दानियों में शिरोमणि रहा है, मेरा तो विचार यही था कि आप अपने वंश में असत्य-वादिता का दोष रूप कलंक न लगाते, क्योंकि--दो०---तवकुल की मर्याद यह, दान देत हर्षाय। हानि लाभ चिन्ता रहित, सब संकोच विहाय॥ हरिश्चन्द्र मोहिं स्वप्न में, दीनी कुन्जी दान। अरु हय केर लगाम सो दई जागि हुलसान॥ अब तुमरी रुचि होय जस, करिय नृपति सुख पाय। मैं प्रसन्नता पूर्वक जाउँ वनहिं हर्षाय॥ वार्ता--तब श्रीवशिष्ठ जी ने श्रीदशरथजी को समझाकर कहा कि--दो०--देहुँ भूप मन हर्षित, तजहु मोह अज्ञान। धर्म सुयश नृप तुम कहँ इनकहँ अति कल्यान॥ जानिय विश्वामित्र सम, अपनो और न मित्र। रामलखन में जानिए, इनको विमल चरित्र॥ चौ०-तब वशिष्ठ बहुविधि समझावा। नृप सन्देह नाश को पावा॥ अति आदर दोउ तनय बोलाये। हृदय लाय बहु भाँति सिखाये॥ दो०-मुनिवर विश्वामित्र सँग, जाहु लखन अरु राम। शिर धरि आयसु पालि

नित, रहना करत प्रणाम ॥ कष्ट न हो मुनिराज को, रखना सन्तत ध्यान। तजि चंचलता बालपन, करना अति सनमान॥ वार्ता—पुनः दोनों पुत्रों का हाथ विश्वामित्रजी को पकड़ाकर कहने लगे कि—चौ०--मेरे प्राण नाथ सुत दोऊ। तुम मुनि पिता आन नहिं कोऊ ॥ दो० —याते अपनो शिशु समुझि, करना छोह अपार। निज सुयश करि पूर्णप्रभु, देना दरश उदार ॥ यदि शिशु चंचलता करें, क्षमिये करुणागार। अपने बालक मान हिय, करत रहिय अति प्यार॥

वार्ता—तब विश्वामित्रजी ने कहा कि-- पद--राजन मन में शंक न कीजै। सन्तत हिय महँ मोद भरीजै॥ दोउ सुत जीवन प्राण हमारे। रहिहैं मम सँग परम सुखारे॥ तब श्रीदशरथजी ने प्रणाम किया, विश्वामित्रजी चलने को तैयार हुये, तब प्रणाम करके श्रीरामजी ने कहा कि--चौ०--जौं गुरुवर की आज्ञा पाऊँ। जाइ मातु चरणन शिर नाऊँ॥ लै प्रभु माँ को आशिर्वादा। तब ढिग आवौं भरि अहलादा॥ तब विश्वा-मित्रजी ने कहा कि-- दो०--जग में जेते पूज्यवर, वरणे वेद पुरान। तिन सब में अति पूज्यतम माता कहब सुजान॥ चौ०--अस्तु जाय पद वन्दन करहू। लहि आशीष हृदय सुख भरहू॥ किन्तु वत्स नहिं विलंब करीजै। चलना शीघ्र हृदय धरि लीजै॥ वार्ता-- श्रीरामजी तथा श्रीलक्ष्मणजी महल में जाकर माताजी को प्रणाम कर कहने कि--- श्लोक) नमोऽस्तुते मातृपदारविन्द मनुग्रहो वाञ्छित मेव मह्यम्। पितुर्निदेशेन व्रजामि शीघ्रं त्रातुं मुनेर्यज्ञमहं महर्षेः॥ दो०--कौशिक मुनि के साथ मोहिं, कियो पिता भरि प्यार। कहेउ करावहु यज्ञ सुत, दुष्ट निशाचर मार॥ अस्तु चरण पर शीश धरि, विनवौं बारम्बार। मा तव आशिर्याद से, मंगल सतत हमार॥

वार्ता---श्रीरामजी के इन वचनों को सुनकर माताजी की समाधि सी लग गई। कुछ समय तक बोलते न बना, तदुपरान्त धैर्य धारणकर बोलीं कि---मेरे जीवन प्राणधन, रामलखन दोउ वीर। बिन देखे विधु बदन तव, कैसे धरिहौं धीर॥ फिर विधाता से निवेदन करने लगीं कि--[पद]--हे विधि मैंने काह विगारो। जेहि लगि तुम करि कोप कहहु किमि, मेरो भवन उजारो॥ मेरे जीवन प्राण लाल दोउ करन चहत दृग न्यारो। हे "गुणशील" स्वरूप कृपामय दीजै वेगि सहारो॥

वार्ता--माताजी को वात्सल्य सागर में विभोर समझकर श्रीरामजी ने कहा कि-(पद) मैया मोहिं प्यार करि लीजै॥ दुख मानन को मातु न अवसर, हिय विश्वास करीजै॥ वेगि आइ तव चरण लागि हौं, आशिष मोकहँ दीजै॥ गुरुवर खड़े विलम्ब होत है, मन में सोच न कीजै। हे "गुणशील" स्वभाव परम प्रिय, चलन चहत लखि लीजै॥ वार्ता--तब माता जी ने दोनों भाइयों को अपनी अंक में बिठाकर दुलार पूर्वक अपने हाथों से मधुर मिष्ठान पवाया, श्रीरंगनाथ जी की प्रसादीमाला पहिराई, पुनः मंगल स्तवन किया---मंगलं कोशलेन्द्राय महनीय गुणाब्धये। चक्रवर्ति तनुजाय सार्वभौमाय मंगलम्॥ पुनः कहा कि--दो०- जाओ मुनि सँग लाल दोउ, मेरे प्राणाधार। रंगनाथ

रक्षा करैं, न्हात खसै जनि बार ॥ मुदित आरती कीन पुनि, राई लोन उतार। जल न्यौछावत प्यार भरि हो पुनि पुनि बलिहार ॥ छं०—सादर हृदय लगाय चूमि मुख नेह समानी। पुनि पुनि मस्तक सूँघि, नैन बरषत शुचि पानी ॥ कहा जाहु दोउ बन्धु किन्तु मुख शीघ्र दिखइहो। वत्स मातु की सुरत कहीं बिसराइ का जइहो ॥ दो०—बिनु देखे मुख कंज तव, मेरी जो गति होय। तुमहिं विदित हो भली विधि, तदपि करैं न कोय ॥ वार्ता—यद्यपि मैं मन से स्वप्न में भी कभी तुम्हें अपनी आँखों की ओट होने देना नहीं चाहती हूँ। तथापि यदि आपको पिताजी ने मुनिराज के साथ जाने की आज्ञा दे दी है, तो मैं विवश हूँ। अब मुझे कुछ भी कहना उचित नहीं है। तब माताजी के चरणों में प्रणाम कर दोनों भाई विश्वामित्रजी के पास आगये। कुछ दूर चलने पर श्रीरामजी के सखाओं का समाज खेलते मिला सबने प्रणाम कर पूछा कि हे प्राणधन जीवन आप हम सबोंको छोड़कर अकेले ही दोनों भाई कहाँ जा रहे हैं। हमलोग भी आपके साथ चलेंगे तब श्रीरामजी ने समझाकर कहा कि भैइया आप लोग तो हमारे सर्वस्व हो। मैं आप सबों को त्याग कैसे करता हूँ ? इस समय पिताजी की आज्ञा से इन मुनिराज के साथ जाकर इनके यज्ञ की रक्षा करके आप लोगों से आकर शीघ्रही मिलेंगे। यद्यपि सखाओं को प्रभु का वियोग सर्वथा असह्य था, तथापि प्रभु की आज्ञा मानकर मृतक सदृश्य रह गये। दोनों भाइयों के साथ मुनिराज मार्ग में जा रहे हैं। गीतावली पद ५२—

ऋषि सँग हरषि चले दोउ भाई। पितु पद वन्दि शीश लियो आयसु, सुनि सिख आशिष पाई ॥ नील पीत पाथोज वरन बपु, बय किशोर बनि आई। शरधनुपाणि पीत पट कटि तट, कसे निषंग बनाई ॥ कलित कण्ठ मणिमाल कलेवर, चन्दन खौरि सोहाई। सुन्दर वदन सरोरुह लोचन, मुखछवि बरणि न जाई ॥ पल्लव पंख सुमन शिर सोहत, क्यों कहौं बेष लुनाई। मनु मूरतिधरि उभय भाग भइ, त्रिभुवन सुन्दरताई ॥ पैठत सरनि शिलनि चढ़ि चितवत, खग मृग बन रुचिराई। सादर सभय सप्रेम पुलकि मुनि, पुनि पुनि लेत बुलाई ॥ एक तीर तकि हती ताड़का विद्या विप्र पढ़ाई। राखेउ यज्ञ जीति रजनीचर भइ जग विदित बड़ाई ॥ चरण कमल रज परसि अहिल्या, निज पति लोक पठाई। "तुलसिदास" प्रभु के बूझे मुनि, सुरसरि कथा सुनाई ॥ वार्ता—सखाओं से विदा होकर चलने पर नगर के बाहरी सीमा के दूर जाने पर बनकी शोभा देख कर विश्वामित्रजी ने कहा कि—दो०—वत्स लखो यह ताल तरु, अति उतंग सुखकंद। बृन्द वृन्द मिलिके करत, भानु प्रभा को मन्द ॥ दोनों भाई देखने लगे, तब श्रीरामजी से लक्ष्मणजी ने कहा कि—दो०—जानि परत मोहिं नाथ यह, इहै ऊँचाई देखि। कहुँ उत्तर दक्षिण कहूँ चलत भानु जिय लेखि ॥ तब श्रीरामजी बोले. (सवैया)—कैसे लसें कचनार अनार रसाल विशाल तमाल सोहाये। देखो अशोक मिले तिलकौं बकुची लकुची अगरौं छवि छाये ॥ फूले भले झपके लपके, "ललिते" अति ही उपमा सरसाये। देन अनन्दन

वृन्दन को, सुमनो वन नन्दन को तजि आये ॥ पुनः लक्ष्मण जी ने कहा- (सवैया)—एक वै धाय धरैं तरु दूसरो, भौंर भ्रमैं सुख राग सने से। पाती हरी कहुँ पीत सुश्यामरी, फूलफली तरु पाय घने से ॥ वायु लगे लहरात सोहात, टरैं नहिं नाथ सो नेक हिये से। देखो इतै लतिकान के जाल लसें अति चारु वितान तने से ॥ तब श्रीरामजी ने कहा भैया लक्ष्मण उधर तो देखो, (सवैया)—चातक कोकिल कीर चकोर औ मोर पुकार करें मन भाये। कोयल घोष महोष मिलै, "ललिते" अति ही उपमा सरसाये ॥ तीतर तूती चँडूलन डोलन, बोलन में रस भूरि बढ़ाये। जोर कहूँ मधुरे मधुरे चहुँओर लखो खग शोर मचाये ॥ लक्ष्मणजी ने कहा--झाँपे सबै जल जातके पातन देखत ही मनको अति मोहैं। और प्रभो! इधर वन में तो देखिए--फूले गुलाब सबै रँग के घुमड़े अलि जे सुषमा न समाये ॥ सारस हंस चकी वक शोर रहे अरिकै वरनै कवि कोहैं। देखो इतै हितकै वन वीर वनी विच कैसो सरोवर सोहैं ॥ तब विश्वामित्रजी ने कहा कि-दो०-सघन छाँह विस्तारित अति, सुभग विलोकहु राम! श्रम निवारिबे हेतु सुत करन चहौं विश्राम ॥ अति सुखमा या विपिन की कही कछुक नहिं जात। राम तिहारो आगमन अचरज सो दरशात ॥ कवित्त-तड़ाग नीर हीर के सनीर होन केशवदास, पुण्डरीक झुण्ड भौंर मण्डलीन मण्डहीं। तमाल बल्लरी समेत सूखि सूखि गये जौन, बाग फूल फूलके समूल मूल खण्डहीं ॥ चितवत चकोरनी चकोर मोर मोरनीन, हंस हंसिनी सुकादि सारिका सबै सहीं। जहाँ जहाँ करते विश्राम रामभद्र आप, तहाँ तहाँ अद्भुत कलान आज देखहीं॥

कुछ समय विश्राम करके आगे चले। चौ०—चले जात मुनि दीन दिखाई। सुनि ताड़का क्रोध करि धाई ॥ किन्तु श्रीरामजी की मंगलमय मंजुल झाँकी देखकर कहती है कि-सवैया-दानव दैत्य हैं देखे अनेकन, चारण सिद्ध अनेकन गाई। राजकुमार लखे हैं अनेक, न देखी कहूँ अस सुन्दरताई ॥ मुझ में दया को न नाम रह्यो, पै विचित्र दशा यह आज लखाई। "श्रीरघुराज" कहा कहिये, नहिं खात बनै नहिं भागे भलाई ॥ यद्यपि ताड़का श्रीरामजी के सौन्दर्य पर आश्चर्य चकित है तथापि राक्षसी स्वभाव के कारण गर्जती हुई आगे बढ़ी। श्रीरामजी सोचने लगे कि हम बीरों के बालक होकर इस अबला पर बाण चलावैं, यह अनुचित है। ताड़का आगे बढ़ी आ रही है, श्रीराम जी बाण नहीं चढ़ा रहे हैं, तब वात्सल्य विभोर होकर विश्वामित्रजी ने हुँकार करके ताड़का की गति रोकदी, फिर श्रीरामजी से कहा कि वत्स यह महा पापिनी है, इसे शीघ्र मार दीजिये, तब हाथ जोड़कर श्रीरामजी ने कहाकि--- प्रभो! यह तो अवध्य अबला है, रघुवंशी स्त्री पर शस्त्र नहीं चलाते। सवैया--- है वरनो वरनी रघुवंश की कीरति छाई है नाथ जहान में। नीति घनी है यही उर में, मति मोरि सभी प्रभु वेद पुरान में ॥ वीर अनेकन हूँ से लरौं न डरौं प्रभु नेकहु मैं संग्राम में। नारि पै बान चलै न प्रभो! निज वंश की आन को राखिके ध्यान में ॥ कवित्त---एक तो प्रथम ही परीक्षाको

दिवस आज, भानुवंशियों का रक्त अपयश न लूटैगा । कीर्ति वीरता भी एक छोर जा छिपेगी और, धर्म बाहु बल का प्रसिद्ध पात्र फूटैगा ॥ 'बिन्दु कवि' चाहे मोहिं कायर बतावैं लोग, किन्तु नीति पथ का विचार तो न छूटैगा । क्षमा कीजिये महर्षि माननीय मुनिनाथ, नारी पर हाथ रघुनाथ का न छूटैगा ॥

तब विश्वामित्र जी ने कहा कि—दो०-नारि जानि नहिं छोड़िये, कर्म करति अति घोर । नारि नहीं यह कर्कशा, दश हजार गज जोर ॥ सवैया—याहि संहारन कारन आपको, लाये कुमार हैं संग लिवाई । बल राखत है दश सहस गजेन्द्र को झारन देत पहाड़ उड़ाई ॥ मारि अकारन बिप्र कुमारन, नाथ अनेकन लीन चबाई । द्रुत मारिय याहि कहा मम मानि; न मारे बिना यहि केर भलाई ॥ दो०-बलिभगिनी सुरपति हनी, भृगु पत्नी हरि आप । जो कुपंथ में पग धरै ताहि बधे नहिं पाप ॥ मुनि बचनों को सुन कर श्रीरामजी ने कहा कि – सवैया--जानत हो रघुवंशिन को पथ मैं मर्याद की वानि निवाहत । दान कृपा न विधानन सों, जसको जगतीतल पुञ्ज पसारत ॥ का कहिये प्रभु सों "ललिते" मैं हिये में बारहिं बार विचारत । नाथ डरौं अपवादहिं से प्रभु, वीर न तीर तियान पै मारत ॥ तब विश्वामित्रजी ने कहा--दो०-हे रघुवंश किशोर प्रभु, धर्महेतु अवतार । अस्तु याहि अब मारि कर, करिय धर्म विस्तार ॥ द्विज द्रोषी न विचारिये कहा पुरुष कह नारि । राम विराम न लीजिये, देहु ताड़का मारि ॥ विश्वामित्र जी के भयभीत बचनों को सुनकर श्रीरामजी को दया आ गई ॥ चौ०-एकहिं बाण प्राण हरि लीना । दीन जानि तेहि निज पद दीना ॥ तब प्रसन्न होकर विश्वामित्रजी ने श्रीरामजी को बलाअति बला विद्या तथा अनेक प्रकार के अस्त्र शस्त्र प्रदान किये । चौ०- जाते लाग न छुधा पिपासा । अतुलित बल तन तेज प्रकासा ॥ दो०--आयुध सर्व समर्पि के प्रभु निज आश्रम आनि । कन्दमूल फल भोजन दीन भगति हित जानि ॥ चौ०- प्रातकहा मुनि सन रघुराई । निर्भय यज्ञ करहु तुम जाई ॥ सवैया--हे मुनिनायक यज्ञ करो, जेहि कारण लै आये मोहिं माँगी । मैं रखवारो खड़ो मख को, करिये सुख से सबहो भय त्यागी ॥ जो कोइ आवै यज्ञ विनासन, मारौं ताहि बचै नहिं भागी । श्रीमहराज खड़े दोउ भ्राब, रखावहिंगे दिन रातिहिं जागी ॥ चौ०-होम करन लागे मुनि झारी । आप रहे मख की रखवारी ॥ सुनि मारीच निशाचर कोही । लै सहाय धावा मुनि द्रोही ॥ बिन फर बाण राम तेहि मारा । सत जोजन गा सागर पारा ॥ पावक शर सुबाहु पुनि मारा । अनुज निशाचर कटक संहारा ॥ मारि असुर द्विज निर्भयकारी ॥ अस्तुति करहिं देव मुनि झारी ॥ धनुषयज्ञ सुनि रघुकुल नाथा । हरषि चले मुनिवर के साथा ॥ पूछा मुनिहि शिला प्रभु देखी । श्रीरामजी ने विश्वामित्रजी से पूछा कि--सवैया--वेद पढ़ैं न कहूँ द्विज बृन्द, बनी यह ऐसी बढ़ावति भैसी । सूखे रसाल तमालन के तरु, जानि परै यह बात अनैसी ॥ कूजैं नहीं खग गुंजें न भौंर, लखी "ललिते" नहिं आज लौं ऐसी ।

कीजै कृपा कहिये मुनिनाथ, ये मारग माहिं शिला प्रभु कैसो ॥ कवित्त--वृक्षन में पात घहरात मुनिनाथ नाहिं, कूप और तड़ाग आग लागि सों लखात हैं। पक्षी नहिं बोलें, औ कलोलें नहिं मीन मच्छ, डोलें ना बटोही इत आवत सकात हैं॥ लटपट परत पैर छटपट बिलोकत वन, गट पट बताओ नाथ, अद्भुत यह बात है॥ तब विश्वामित्रजी ने कहा कि--दो०-गौतम नारि श्राप बश, उपल देह धरि धीर। चरण कमल रज चाहति, कृपा करहु रघुवीर॥ सवैया--संग रमी सुरनायक के छल के बल पाप भरी छरी छीजै। ताप भरी पति श्राप सों पीड़ित, गौतम नारि प्रभो! गति दीजै॥ कै करुणा करुणानिधि पावन, एक इहै जगमें यश लीजै। हे रघुवीर! सुशील सुभाव, छुवाय के पाँव कृतारथ कीजै॥ तब श्रीरामजी ने हाथ जोड़कर कहा कि-दो०-हे गुरुवर हम नृप कुवँर, ब्राह्मण पूज्य हमार। मुनि पत्नी तन पग छुवत, होय महा अपचार॥

यह सुनकर विश्वामित्रजी ने कहा कि-दो०-राम बचन तुव सत्यवर, कीजिय तदपि विचार। पर सुख साधन करन में, होत नहीं अपचार। यदि तुम मुनि पत्नी निदरि देते चरण छुवाय। तो निश्चय जिय जानिये लगतो पाप अघाय॥ किन्तु न यह अपचार है, होय परम उपकार। याते चरण छुवाय के, कीजै बेगि उधार॥ तब गुरु आज्ञा गरीयसी के सिद्धान्तानुसार संकोच पूर्वक शिला में चरण छुवा दिया। छं०-परसत पद पावन शोक नशावन प्रगट भई तपपुञ्ज सही। देखत रघुनायक जनसुखदायक सनमुख ह्वै कर जोर रही॥ श्रीअहल्याजी ने कहा कि हे प्रभो!--मैं नारि अपावन प्रभु जगपावन रावणरिपु जन सुखदाई। राजीव विलोचन भव भय मोचन पाहि पाहि शरणहिं आई॥ मुनि श्राप जो दीना अति भल कीना परम अनुग्रह मैं माना। देख्यों भरि लोचन हरि भव मोचन इहै लाभ शंकर जाना॥ विनती प्रभु मोरी मैं मति भोरी। नाथ न माँगौं आना। पद पद्म परागा रस अनुरागा मम मन मधप करै पाना॥ जेहि पद सुर सरिता परम पुनीता प्रगट भई शिव शीश धरी। सोई पद पंकज जेहि पूजत अज मम शिर धरेउ कृपालु हरी॥ अहिल्याजी की इस प्रकार भावयुक्त प्रेम भरी प्रार्थना सुनकर श्रीरामजी ने एवमस्तु कहा, तब अहिल्याजी श्रीरामजी के चरणों में बार बार प्रणाम करके प्रसन्न चित्त से आनन्द पूर्वक पति लोक (श्रीगौतमजी के आश्रम) में चली गईं॥

तब वहाँ से-चौ०-चले राम लछिमन मुनि संगा। गये जहाँ जग पवनि गंगा॥ श्रीरामजी के पूछने पर-चौ०-गाधिसूनु सब कथा सुनाई। जेहि प्रकार सुरसरि महि आई॥ वार्ता--विश्वामित्रजी ने कहा हे राघव! आपकी वंश परम्परा में कई पीढ़ी पूर्व आपके पूर्वज महाराजा सगर हुये, उनके केशनी और सुमति दो रानियाँ थीं। केशनी के पुत्र असमंजस और असमंजस के पुत्र अंशमान हुये, दूसरी रानी सुमति के साठ हजार पुत्र हुये थे, असमंजस राज को स्वीकार न करके बन में भजन करने चले गये। सगरजी ने अश्वमेध यज्ञ का घोड़ा छोड़ा, इन्द्रदेव ने घोड़ा चुराकर कपिलदेवजी के

आश्रम में ले जाकर बाँध दिया। खोजते हुये सगर के पुत्र वहाँ पहुँचे, घोड़ा को बँधा देखा, कपिलदेव की समाधि लगी हुई थी, राजपुत्रों ने कोलाहल किया कि पकड़ो चोर मिल गया। उस कोलाहल के कारण महात्मा की समाधि में बाधा पड़ी मुनि को क्रोध आ गया, उनको आँख खुलते ही साठो हजार पुत्र जलकर भस्म हो गये। पुत्रों के बहुत दिन तक न लौटने पर सगरजी ने अपने पौत्र अंशमान को भेजा वह भी वहाँ पहुँचे, गरुड़जी के द्वारा अपने चाचाओं के भस्म होने का कारण जानकर दुखी चित्त से अयोध्याजी आकर सगरजी को समाचार सुनाया, तब सगरजी ने अंशमान को राजभार सौंप दिया, स्वयं वन में तपस्या करने चले गये। बहुत समय तक तपस्या करके शरीरान्त होगया, तब अंशमान अपने पुत्र दिलीप को राज देकर ३२ हजार वर्ष तक तपस्या करके शरीर पूरा किये। तब दिलीप भी अपने पुत्र भगीरथजी को राजदेकर तपस्या किये, किन्तु गंगाजी नहीं लासके, दिलीप के मरने पर भगीरथ विना पुत्र हुये ही मंत्रियों को राज्य सौंपकर तपस्या करने चले गये। दश हजार वर्ष बीतने पर ब्रह्माजी ने दर्शन देकर वरदान में गंगाजी को दिया, तभी से ये गंगाजी पृथ्वीतल पर वह रही हैं। भगीरथ जी लाये थे, इसीसे भागीरथीगंगा कही जाती हैं। इनकी महिमा अपार है। भगीरथजी गंगाजी की कृपा से अपने साठ हजार पूर्वजों का उद्धार किया। स्कंद पु० ब्रह्म खं० गंगा महात्म्य ११ अ० ७वें श्लोक में लिखा है कि—गङ्गागङ्गेति यो ब्रूयाद् योजनानां शतैरपि। मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति॥ और महाभारत वन पर्व के ८५ अ० में ९४। ९४-९८ तथा अनुशा० २६ अ० के २६-१०१-१०६ यह पूरा अ० गंगा महा० से ही भरा है। गंगा महिमा के श्लोक मानस सिद्धान्त भाष्य के द्वितीय खं० ११२२ पृ० से लिये हैं। कथा प्रसंग प्रथम भाग के पृ० ६२६-२७ से दिया है।

विश्वामित्रजी के द्वारा गंगा का आगमन तथा महात्म्य सुनकर – चौ०–तब प्रभु रिषिन समेत नहाये। विविध दान महिदेवन पाये॥ हरषि चले मुनि वृन्द सहाय। वेगि विदेह नगर नियराया॥ पुररम्यता राम जब देखी। हरषे अनुज समेत विषेखी॥ विश्वामित्रजी ने कहा कि-दो०–राजतनय देखो इतै, अति सुषमा सरसाति। जनक नृपति के नगर की, धर्मध्वजा फहराति॥ धवल पताका देखि यह, लगेउ हियो हर्षान। निमि कुल मणि को सुयश मनु सुरपुर कियो पयान॥ यह सुनकर लक्ष्मणजी ने कहा-दो०–लाल पताका देखि यह, बढ़त हिये अति मोद। जनु अरुणोदय नगर को, सियकोदित चहुँ कोद॥ तब श्रीरामजी बोले-दो०- पीत पताका नीलमणि, छत्रन में उरझाय। भले मेघ के संग में, दामिनि वंक लखाय॥ श्रीरामजी ने श्रीलक्ष्मणजी से कहा–सवैया––कैसी बनी यह दिव्यपुरी, लखिये प्रियबन्धु छटा नगरी। नवकुंजन पुंज औ वाटिका बागन, कोटिन नन्दन सों अगरी। कंचन धाम बने अभिराम मणीगण ज्योति जगामग री। "गोविन्द" काह कहूँ हियको अति लागति है प्रिय या नगरी॥ कवित्त – चहुँदिशि वाटिका

सुहाटिका छवी को मनो, कोकिला की कूक मोहिं बरबश बुलाये लेत। चपलचमक चारु मणिमय सुभौनन की, विद्युत द्युतिहारी चटक चमको चुराये लेत॥ सबै नरनारी मनोहारी अनूप रूप, सुधा सानी बानी मेरे मन को लुभाये लेत। कहा "गोविन्द" या पुरी में कछु इन्द्रजाल, बरबश मन मेरो बन्धु बागी बनाये देत॥ तब विश्वामित्रजी ने श्रीरामजी से कहा--दो०-परमरम्यतर बाग यह, सब विधि सकल सुपास। वत्स हमारो मन कहत कीजै यहाँ निवास॥ पुनः लक्ष्मणजी बोले--दो०-धाम धाम पै कलश यह, लखि दृग अति सुख होत। जनु रवि रश्मि बहुरूप नित, पुर द्युति करत उदोत॥ नाथ लखो मिथिले पुर, छविधर सुषमा ऐन। जेहि लखि लाजत इन्द्रपुर, जनक नगर सम हैन॥ यह सुनकर श्रीरामजी ने कहा कि--- दो०--महल महल प्रति विमल ये, धवल ध्वजा फहरात। मानहुँ नृपति विदेह के, यश निशान घहरात॥ प्रभु के भाव भरे शब्दों को सुनकर दूर से संकेत करके श्रीलक्ष्मण जी बोले-दो०-अटा अटा पर तियन की, कैसी छटा दिखाय, मनहुँ घटाघन विज्जुगण, प्रगटत औ छिपि जाय॥ ७७॥ देखि अनूप एक अँवराई। सब सुपास सब भाँति सोहाई॥ कौशिक कहेउ मोर मन माना। इहाँ रहिय रघुबीर सुजाना॥ दो०-यह अमराई अतिसुभग, सब सुपासयुत राम, मोरे मन आवत यहाँ, करौ वत्स विश्राम॥७८॥ मुनिराज की वात्सल्य पूरित बातें सुनकर श्रीराम जी ने कहा कि--जो आज्ञा गुरुदेवजी, लेउँ शीश पर धार। प्रभु की रुचि पालन करूँ यह कर्तव्य हमार॥ ७६॥ भलेहिं नाथ कहि कृपा निकेता। उतरे तहँ मुनि वृन्द समेता॥ विश्वामित्र महा मुनि आये। समाचार मिथिलापति पाये॥

श्रीविश्वामित्रजी श्रीरामजी कुमार लक्ष्मण जी तथा मुनि मण्डली समेत बाग में बिराजे, तब माली ने आकर प्रणाम किया, और निवेदन किया कि, सेवक आपका परिचय जानना चाहता है, क्योंकि दरबार में सूचना पहुँचाउँगा। तब श्रीमिथिलेश जी महाराज आपको स्वागत सत्कार पूर्वक नगर में ले जायेंगे। विश्वामित्र जी ने कहा कि हम तो सन्त हैं, नगर की अपेक्षा यहीं रहना हमारे लिये अधिक सुविधाजनक रहेगा। तथापि आप योगिराज श्रीविदेहजी से कहना कि-- सिद्धाश्रम निवासी गाधिनन्दन विश्वामित्रजी अपनी सन्त मण्डली समेत आपके बाग में आ गये हैं। दूत ने आज्ञानाथ कहकर प्रणाम किया और नगर को ओर चला गया। दरबार में जाकर कहा कि--दो०--जय जय हो महाराज तब, श्रीमिथिलेश नरेश। मुनि समाज युत गाधि सुत, आये प्रभु के देश॥८०॥ युगल मनोहर मंजुतर, मूरति अति सुकुमार। संग लिये बालक सुभग, सुषमागार अपार॥ ८१॥ सुनते ही चौंककर श्रीजनकजी ने कहा-क्या मुनिराज श्री-विश्वामित्रजी आगये हैं। तब तो मेरे अहोभाग्य हैं। हाथ जोड़कर सतानन्दजी से कहा-कवित्त-कृपाकरि पधारे मुनिराज प्रभु नगर माहिं, सुनते हैं समूह ऋषि साथ में पधारे हैं। पूजा सामिग्री सजाय नाथ चलिय बेगि, विप्र मण्डली के संग भाग्य अति हमारे हैं॥

मन में उमंग उठ रही है बहुत मेरे आज, ऐसा लग रहा है आये आत्मधन सुम्हारे हैं। जय जय भूप भावन कृपाके रूप बोले नाथ, 'गुनशील' पठये हमारे प्रण पूर्ण हारे हैं ॥ ॥ ऐसा कहकर दो०-संग सचिव शुचि भूरि भट, भुसुर वर गुरु जाति। चले मिलन मुनि नायकहिं, मुदित राव यहि भाँति ॥ ८२ ॥

श्रीविदेह जी आरहे हैं, मुनिराज भजन करने लगे तब तक श्रीरामजी दोनों भाई बाग घूम घूमकर शोभा देख रहे थे। उधर श्रीजनकजी समाज समेत निकट आगये। और--कीन प्रणाम चरण धरि माथा। दीन असीष मुदित मुनिनाथा ॥ विप्र वृन्द सब सादर वन्दे। जानि भाग्य बड़ राव अनन्दे ॥ तब विश्वामित्रजी ने विदेहजी से कहा-- दो०-कहिये श्रीमिथिलाधिपति, सब विधि निज कुशलात। विश्व वन्द्य भगवान शिव तब रक्षक दिन रात ॥ हाथ जोड़कर विदेहजी बोले, दो०-नाथ आपकी कृपाते, सब प्रकार कुशलात। प्रभुदर्शन हित सर्वदा, रहे नयन अनुलात ॥ अब लखि प्रभु के पद कमल पायेउ मोद महान। योगक्षेम सन्तत करत, सब विधि शिव भगवान ॥ चौ०-तेहि अवसर आये दोउ भाई। गये रहे देखन फुलवाई ॥ श्याम गौर मृदु वयस किशोरा। लोचन सुखद विश्व चितचोरा ॥ उठे सकल जब रघुपति आये। विश्वामित्र निकट बैठाये ॥ भय सब सुखी देखि दोउ भ्राता। वारि विलोचन पुलकित गाता ॥ मूरति मधुर मनोहर देखी। भये विदेह विदेह विशेषी ॥ धैर्य धारण कर हाथ जोड़ कर श्रीजनकजी ने विश्वा-मित्रजी से पूछा — कवित्त - नाथ कहिये साथ में बालक मनोहर ये, मुनिकुल उजारेया नृपति दुलारे हैं ॥ सहज ही विराग के स्वरूप प्रभु हमारो मन, चन्द्रमुख दिखाइ के चकोर करिडारे हैं। सुनिये "गुराशील" करुणा निधान हे मुनीश, इनकी मंजुमाधुरी पर सर्वस हमवारे हैं॥ सवैया- कोटि मनोज लजावनहार एमत्तगयन्दनकी गति जोहैं। देखे सुने अबलौं न कहूँ, अति सुन्दर जोरी अलौकिक सोहैं॥ होत हिये अनुराग महाँ, कहि जाय न सो रसना सकुचौहैं। मुनिनायक जू कहिये सतभाव, यह अद्भुत रूप धरे नर को हैं ॥ दो०-लखि इनकी मुख माधुरी, मन से गयो विराग। बरबश ही मम हृदय से गयो ब्रह्म सुख भाग ॥ कवित्त -देखत ही इनकी मंजु मूरति हे नाथ सुनो, हृदय से विराग ब्रह्मसुख भागि गयो है। मन तो विन मोल ही बिकानो प्रभु इनके हाथ, मो पै न जाने कौन जादू करि दयो है। इनकी मुखचन्द्र सुधा माधुरी विहाय देव, देखन नहि चहत अपर इनके वश भयो है। कहिये "गुणशील" समरथ्य अहै हेतु कौन, मेरो मन इनके रूप मीन है गयो है ॥ कवित्त—एक ओर ब्रह्म ज्योति धवलीकृत धारा दिव्य, दीपितदिगन्त भहर भहर भहरा रही ॥ एक ओर भव्य नव्य नीलम महाछविकी, उदधीकृत आभा लहर लहर लहरा रही॥ एक ओर कोटि मार्तण्ड की प्रचण्ड प्रभा,अखण्ड ब्रह्माण्ड छहर छहर छहरा रही। अहह 'गोविन्द" समझ आता न रहस्य कौन, प्राणों में विवश कहर कहर कहरा रही ॥ किधौं त्रैलोक्य शोभा आज पुंजीभूत भई, जिनको समेटि विधि युगल

बनाये हैं। कैधौं मनोज ऋतुराज युग रूप धरि, करिवे को चित्त विवश, इतै चलि आये हैं॥ कैधौं शृंगार छवि वारिधि के युगल रत्न, मथि कै मनोभव निज हाथ प्रगटाये हैं। अनुपमेय "गोविन्द" कछु उपमा कही न परै, बरबश वश प्राण कीने नयनन लुभाये हैं॥ अहो इनहिं लगता है बरबश लगालूँ हिये, छोड़ूँ न छन भर प्राण रहते शरीर में। प्राणों के अतिथि इनहिं पलकों से पोछि राखूँ, रहूँ आशक्त जैसे मीन प्रियनीर में॥ चूमि मुखचन्द्र चारु प्यार से दुलार करूँ, सन्तत सुलाऊँ दृग पुतरिन के तीर में। वारि वारि ब्रह्म सुख लगता इनहिं की रुख, "गोविन्द" मिलजाऊँ जैसे नीर प्रिय छीर में॥ इनके—कीट कमनीय पै कोटिरवि चन्द्र वारूँ, हीरक हजार हार कुण्डल झलकान पै। नयन नुकीलिन पै कोटि नीरज मृग मीन वारूँ, कोटिन मनोज चाप भृकुटी कमान पै॥ जुलुफ जाल ऊपर कोटि सावन घनराजि वारूँ, कोटि कोटि दाड़िम द्युति दन्त दमकान पै। अधर अरुणारे पर बिम्बाफल कोटि वारूँ, 'गोविन्द' सर्वस्व वारूँ मन्द मुसुकान पै॥

तब विश्वामित्रजी ने कहा --दो०-योगीराज विदेह नृप, तुमरो नीक विचार। सत्य बचन अनुभव जनित श्रुति पुराण के सार॥ कवित्त—जगत में चराचर हैं जीव सब रूप माहिं, सबके प्राण प्यारे ये अनूप रूप धारे हैं। अवध महीपति चक्रवर्ति दशरत्थ जू के, राजकुँवर सुषमा समुद्र सुकुमारे हैं॥ इनके समान अवर पुत्र दो भूपति घर, उनहुन की छवि पर कोटि मदन वारि डारे हैं। मेरे यज्ञ रक्षण हित भेजे मम साथ भूप, सकल "गुणशील" धाम खलगण संहारे हैं॥ दो०—श्यामल गौर किशोर वर, रामलखन शुभ नाम। मम मख रखेउ बाहु बल, ये छविधर सुखधाम॥ विश्वामित्र के वचनो को सुनकर विदेहजी मन में सोचने लगे कि—दो०—यदि इनने बधि रातिचर मुनि मख रक्षा कीन। मम प्रण पूरण करन हित हम कहँ दर्शन दीन॥ तो अवश्य करुणायतन, परम तत्त्व अखिलेश। धनुष तोरि सिय को वरहिं. ये मेरे हृदयेश॥ द्रुत तोरैं यह शिव धनुष, पूरन हो मम आस। निज कर धोवौं पद कमल, हिय भरि परम हुलास॥ बाद में विदेहजी से कहा कि—कवित्त—सुनिये मुनीश तव चरणन को दर्शन पाय, आज मम भाग जे तो जात नहिं गायो है। श्यामल गौर बन्धु दोऊ, दृग भरि विलोके हम, आनँद हूँ को आनँद धरि रूप प्रगटायो है॥ इनकी मन भावन परस्पर सोहावन प्रीति, जैसे ब्रह्म जीव सहजही में अरुझायो है। हृदय में उठाकर बिठा लूँ "गुणशील" इनहिं, कंजमुख निरखि मन मधुकर लुभायो है॥ चौ०-पुनि पुनि प्रभुहिं चितव नर नाहू। पुलक गात उर अधिक उछाहू॥ मुनिहिं प्रशंसि नाय पद शीशू। चलेउ लवाय नगर अवनीशू॥ सुन्दर सदन सुखद सब काला। तहाँ बास लै दीन भुआला॥ करि पूजा सब बिधि सेवकाई। गये राव गृह विदा कराई॥ दो० रिषय संग रघुवंश मणि, करि भोजन विश्राम। बैठे प्रभु भ्राता सहित, दिवस रहा भरि जाम॥ चौ०-लखन हृदय लालसा विशेषी। जाइ जनकपुर आइअ देखी॥ किन्तु भगवान् का भय और मुनि के संकोच वस कुछ भी बोलते नहीं हैं,

मन्द-२ मुसुकाते हैं। चौ०--रामअनुज मन की गति जानी। भगत बछलता हिय हुलसानी॥ परम विनीत सकुचि मुसुकाई। बोले गुरु अनुशासन पाई॥ नाथ लखन पुर देखन चहहीं। प्रभु सकोच बस प्रकट न कहहीं॥ कवित्त-- नाथ कछू विनती सुनिये, रघुराज चहै लघु बन्धु हमारो। पाय रजाय तिहारि प्रसन्न सों, देखहुँ मैं मिथिलापुर सारो॥ मोहिं लजाय डरै तुमको, प्रभु ताते नहिं बैन उचारो। जाऊँ लेवाय लै आऊँ देखाय पुरी यदि शासन होय तिहारो॥ वार्ता—यदि आपकी आज्ञा हो, तो मैं नगर दिखाकर शीघ्र लौट आऊँ। विश्वामित्रजी की आज्ञा पाकर दोनों भाई नगर देखने गये।

नगर-दर्शन, मैथिल बालकों का लीला पाठ)

जिस दिन विश्वामित्रजी श्रीरामजी और लक्ष्मणजी के साथ श्रीमिथिलाजी पधारे उसके पूर्व वाली रात में एक मैथिल बालक ने स्वप्न देखा, कि मुनि विश्वामित्र जी के साथ श्याम गौर परम सुन्दर दो राजकुमार आये हैं। उसने स्वप्न में श्रीराम जी का दर्शन किया, तभी से उसका मन उस मंजुलमयि मधुर मूर्ति के हाथ बिना ही दाम बिक गया, प्रातःकाल जगने पर नित्य क्रिया करके, अपने सखाओं से मिला, किन्तु उसका मन तो श्याम चित्त चोर ने स्वप्न में ही चुरा लिया था, इसलिये उसको कुछ भी व्यवहार प्रिय नहीं लगता था, तथापि सभी सखाओं से प्रेम पूर्वक मिला। तब अपने स्वप्न की चर्चा की, एक बालक ने पूछा कि बन्धुवर! विश्व में सबसे महान क्या है? आप कृपा करके बतलाइये, द्वितीय बालक ने कहाकि—भाई इस विषय में अनेक मत हैं किन्तु मैं अपना सिद्धान्त प्रस्तुत करता हूँ। कवित्त–कोई कहते हैं बन्धु सबसे बड़ा है ज्ञान, करते महत्ता कोई कर्म को प्रदान है। कोई कहते हैं कि जप तप बड़ा है योग, कोई बताते उपासना महान है॥ किन्तु–मैं तो मानता हूँ सखे सबसे बड़ा है प्रेम तानते हैं अन्य सभी तर्क के वितान हैं। प्रेम में भी "गोविन्द" सम्बन्ध हैं अनेक किन्तु, सख्यसा रँगीला रस और नहीं आन है॥ प्रथम बालक-दो०-ज्ञान शिरोमणि विश्व में, मिथिलापति विख्यात। है ज्ञानी तुम कर रहे, प्रेम प्रेम की बात॥ कल तक थे तुम ज्ञान की, चर्चा रहे चलाय। आज प्रेम को रट रहे कहो गये बौराय॥ द्वितीय बालक-दो०-था गर्वीला ज्ञान का, सत्य कहा हे मित्र। पर मम उर में खिच रहा आज सजीला चित्र॥ निर्विकार ज्ञानियों का उर नित श्वेत पवित्र। किन्तु बन्धुवर -यह विचित्र है खिच रहा वहाँ सजीला चित्र॥ कवित्त-- लगता है बन्धु एक सुभग सजीला श्याम, वर्ण की न जिसके घन कंज उपमान हैं। परम रसीला तन धारे पट पीला-पीला वयस का किशोर कर धारे धनु बान है॥ केश घुँघुराले तिनपर शोभित है कीट मुकुट, नयन कजरारे मुख मन्द मुसुकान है। नेह गर्वीला एक "गोविन्द" रँगीला चित्र, छयल छबीला मित्र खींच रहा प्रान है॥ प्रथम बालक दो०-प्रेमिन की बानी वदत, भरे प्रेम उद्गार। चलहु भ्रमण कहि कल्पना

है जावैं साकार ॥ कुछ दूर चलने पर प्रकाश पुंज को देखकर आश्चर्य चकित होकर अपने अपने भाव प्रगट करने लगे दो०--बन्धु कहा यहि दिशि लखहु, प्रबल छटा छहराय। कोटि कोटि शत भानु जनु, उये एक सँग आय ॥ द्वितीय बालक-- नहीं नहीं बन्धुवर! दो०--एक ओर छवि श्याम सी, दूजी गौर लसन्त। मनु घन दामिन की छटा, छहर रहीं छविवन्त ॥ प्रथम बालक- बन्धु कुछ और समीप चलिये। श्रीरामजी एवं श्री-लक्ष्मणजी को देखकर कहा--अहह सखे! देखिये तो ये दोनों कौन हैं। श्लोक--उयच्छशांक छबिमान विमर्दमन्तौ, आस्य प्रभा विजित मंजुल पंकज श्री। स्नेहावलोकन परैर्नयनाभिरामैः, चिन्तापहारमधिवौ कुरुतौ सखे कौ ॥

प्रथम बालक दो०-अनुपमेय शोभा सदन, श्याम गौर सुकुमार। अंग अंग प्रविवारिये, कोटि कोटि शत मार ॥ द्वितीय बालक दो०- कीटमुकुट की लटक पै, अटकि रह्यो मन मोर। दृग न पलक डारेउ चहत, उर विच उठत मरोर ॥ प्र०बा०दो०--जुलफ जाल कुँचित कलित, ललित कपोलन कौर। मानहुँ ललित कपोल रस पीवन हित जुरे भौंर ॥ द्वि०बा०दो०-नयन बड़े कज्जल कलित, श्वेत श्याम रतनार। जियतमरत झुकि झुकि परत, जेहिदिशि देत निहार ॥ प्र०बा०दो०-अनुपमेय आननलस्यो, नाशाशुक अनुहार। तापै एक मोती परयो, अजब सुराहीदार ॥ द्वि० बा० दो०--दूर्वादिल द्युति वदन पै, अलकपोल रसपूर। श्याम रंग पै लसे जनु, गदरीले अंगूर ॥ प्र० बालक- हाँ हाँ तभी तो भैया देखिये तो अधर ॥ दो०-मकराकृत कुण्डल श्रवण, हलनि कपोलन भाय। मनहुँ मीन द्राक्षा समुझि, चाहत चोट चलाय॥ "गोविन्द" अरुणिम अधर बिच, रहे दशन छवि पाय। कुसुम कुन्द बिम्बा पुटक, मानहुँ रचे बनाय॥ प्र० बा० दो०-'गोविन्द" मधुमय अधर पै मुसुकनि की बलिहार। मानहुँ रसिकन हित कठिन, मोहन मन्त्र प्रचार ॥ द्वि० बालक दो०--श्वेत ऊर्ध्व रेखा युगल, तामधि युगल लसन्त। पीत और कुंकुम छटा, अतिसय छवि छहरन्त ॥ प्र० बा० दो०--शुकलजवानो नाशिका, शुक तारक मणिवन्त। अब "किशोर" उर बसि गये, श्यामल कुँवर हसन्त ॥ द्वि० बा० दो०-अरुणाधर अतिशय सरस, किंशुक कुसुम समान। बसि "किशोर" नैनन गये, अन्तर अति ललचान ॥ प्र० बालक दो०-श्यामारुण मनभावने, मंजुल मुकुर कपोल; जनु "किशोर" द्राक्षा सरस लेत रसिक मनमोल ॥ कवित्त-मिथिलापुर वासी हम बालक विरागी, जगरूप के न रागी तिनहिं बागी बनाये देत। ब्रह्म ज्ञानियों का गढ़ परमपुरी में देखो, रूप के अगारे आज आगी लगाये देत ॥ चित्त की प्रतीति हमें, सतत रही है मित्र, चरित्र विचित्र आज ताहि के दिखाये देत। श्याम गौर तेज की "किशोर" मंजु मूरतिये सारे ब्रह्म ज्ञान की सफेदी ही मिटाये देत ॥ सवैया-रस ही रस के बने दोनों मनो, रसधारें चले बरसाते हुये। अहो बन्धुवर रस ही रस क्या कर देंगे यहाँ, कर क्या रहे ये मुसुकाते हुये। गढ़ ज्ञान का ढूब विराग गया, सभी संयम शून्य बनाते हुये ॥ यह श्यामल गौर "किशोर" अरे,

कर देंगे प्रलय रसमाते हुये ।। भैया मैं अपने मनकी बात बताता हूँ । दो०-लगता मुख चूमि लगालूँ हिये, दृग से महामाधुरी पीता रहूँ । जगतीतल में कुछ और भी है, इस ख्याल से पूर्ण व्यतीता रहूँ ।। मन मोहन विश्वविमोहन मैं, तुम्हें देखता ही बस जीता रहूँ । भुजडाले "किशोर" सुअंशन में, सदा गाता सुप्रीति कि गीता रहूँ ।। तब दूसरे बालक ने कहा भैया देखिये तो उधर— द्वि० बा० कवित्त— लघु बन्धु के अंशपै हाथ धरे, खड़े कैसे त्रिभंगी बनाये हुये । अलकावली काली निराली छहो, मुसुकान को जाल बिछाये हुये ।। मिथिलापुर को तो अरण्य किया, मृग से पुर लोग फसाये हुये । दृग बाण "किशोर" कमाल करैं, फिर क्यों धनु ये लटकाये हुये ।। तब प्र०बा० ने कहा कि—कवित्त— का कहिये उरभाव सखे यहि काल सुनो हमरे मन जोई । होय रही मनमें अभिलाष, न भाषि सकौं न सकौं तेहि गोई ।। सुन्दरता अनुकूल अहै, सम्बन्ध यहू नृप मन्दिर होई । तौ हिलिके मिलिके हँसि कै, सबलोग इनहि कहते बहनोई ।। वार्ता-बन्धुवर ! यदि श्यामले सलोने से हमारी लाड़िली श्रीकिशोरीजी का व्याह हो जाता, तब तो हम लोगों का जीवन कृतार्थ हो जाता । हम सब इनको प्राणों से भी अधिक प्यार करते । इनके श्रीचरणार- विन्दों की सेवा में अपना सर्वस्व न्यौछावर कर देतें ।

तब प्र० बा० ने कहा कि हम लोग इनके निकट चलकर इनका परिचय लें कि ये कौन और कहाँ से आये हैं । हो सकता है कि ये हम लोगों के मित्र बन जायें । तब तो हम सब धन्य हो जायें । सभी बालक निकट आकर रूप माधुरी का पान करने लगे । प्रथम बालक ने हाथ जोड़कर पूछा कि— दो०— श्याम गौर सुषमा सदन, मन मोहन सुकुमार । हे "गुणशील" स्वरूप निधि, कहँ घरै द्वार तुम्हार ।। केहि कारण कहँ जात हो, कहिए मन की बात । निज परिचय बतलाइये, हम तुमपर बलि जात ।। उस बालक की प्रेम भरी बात सुनकर मन्द मुसुकाते हुए श्रीरामजी ने कहा—दो० मुनिवर विश्वा- मित्र संग आये मिथिला धाम । अवधपुरी मम ग्राम है रामलखन मम नाम ।। चक्रवर्ति अवधेश सुत, हम दोनों निज भ्रात । देखन हित मिथिला नगर चले हृदय हुलसात ।। मिलि जातो यदि मित्र कोइ, देतो नगर दिखाय । हम मनते उपकार बड़, द्रुत गुरुवर ढिग जाय ।, तब प्र० बालक ने कहा कि— दो०—चक्रवर्ति अवधेश सुत, हो तुम दोनों भ्रात । हम धनहीन अबोध शिशु मित्र बनत सकुचात ।। हम सब परम असभ्य हैं तुम प्रवीण सब भाँति । हम सब साधारण प्रजा, प्रभु उत्तम कुल जाति ।। यदि नहिं कछु संकोच हो राजकुँवर मन माहिं । तो "गुणशील" स्वरूप निधि, लेवैं मित्र बनाय ।। छंद – सुनि तिनके वर बैन प्रेमरस भरे मधुर तर । विहँसे सुषमासदन मदन मर्दन सनेह घर ।। पुनि बोले श्रीराम वचन अति प्यार सरस तर । वर्धक प्रेम पियूष प्यार पालक प्रमोदकर ।। दो०--यद्यपि हम अवधेश सुत, पिता महीपन ईश । अखिल विश्व के भूप सब, नावत जिनको शीश ।। तदपि हमारी रीति यह, सुनो सकल दे ध्यान ।

जाति पाँति गुण दोष तजि, प्रेमी हिय पहिचान ॥ सब विधि अपनो चाहिकरि, राखत हृदय लगाय। भेद भाव मानौं नहीं, पालौं रुचि हर्षाय ॥ तब वह प्रथम बालक बोला--कवित्त--चक्रवर्ती अवध नरेश के कुमार आप, हम धनहीनों से सनेह क्या बढ़ाओगे। तुम तो हो विमल विवेक सभ्यता के रूप, हम से असभ्यों को निकट क्या बुलाओगे॥ एक 'अश्रु विन्दु' की है सेवा हमारे पास, बोलो इसी धन से कहीं रीझि तो न जाओगे। खोटे हैं, खरे हैं, या भले हैं या बुरे हैं किन्तु सत्य कहो मित्र हमें भूल तो न जाओगे॥ मैं पीड़ा का राजकुँवर हूँ, तुम शहजादे रूप नगर के। विधि विधान से हुई भेंट जो, बोलो साथ कहाँ तक दोगे। यह मिथिला प्रकाश की नगरी, ज्ञान विचिन्तन काम हमारा, किन्तु आज सब हवा होगया, लखते रूप ललाम तुम्हारा। अब तो आशिक हुये तिहारे बोलो साथ कहाँ तक दोगे ॥ वर्ण तुम्हारे कर्ण तुम्हारे, औ ये दृग विन्यास तुम्हारे। केश तिहारे वेश तिहारे, ये अरुणाधर प्यारे प्यारे, रूप बजार "किशोर" विक गया बोलो माल हमें क्या लोगों ॥ मैं पीड़ा का....॥

इस प्रकार वार्तालाप होने के बाद उन बालकों ने श्रीरामजी को प्रणाम किया, श्रीरामजी उन सबों को प्रेम पूर्वक गले से लगाकर मिलें। फिर सभी बालकों के साथ नगर देखनेको चले, नगरमें प्रवेश किया, सभी मिथिलावासी उस अपार रूप सौन्दर्य माधुरी का रसास्वादन करने लगे। कवित्त-छोटे बड़े पुरवासी सबै लखे रूप अनूप सु भूप किशोरन। मेचक कुंचित केश मनोहर चंचल नैनन चित्त के चोरन॥ श्री "रघुराज" चलैं मग मंद अनंद उदोत करै सब ठौरन। खूब खुशी के खजाने खुले पुर धावन धावन खोरन खोरन॥ बिज्जु छटा ज्यों घटा घन में, तिमि ऊँची अटान चढ़ीं पुरनारी। धाम को काम बिसारि वधू युग बन्धु विलोकहिं होहिं सुखारी ॥ श्री रघुराज के आनन अम्बुज भे अलि अंबक आशु निहारी। पावैं यथासुर पादप को यक बारहिं भाग ते भूखे भिखारी ॥१॥ चौ०--देखन नगर भूप सुत आये । समाचार पुरवासिन पाये ॥ धाये धाम काम सब त्यागी। मनहुँ रंक निधि लूटन लागी॥ युवती भवन झरोखन लागीं । निरखहिं राम रूप अनुरागीं ॥ कहहिं परस्पर बचन सप्रीती। सखि इन कोटि काम छवि जीतीं ॥

एक सखी ने सखियों से कहा--दो०-कहाकहौं पुरकी प्रभा, आज नई दरशात। जनु कीनी है विधि सखी, सुषमा की बर्षात ॥ तीन लोक में कौन अस, जो सखि कहिय समान। या सुषमा के सदनको, होय औन उपमान ॥ यह सुनकर दूसरी सखो ने कहा-दो०--सखि सुनियत हैं विष्णु अति, रूपवंत भगवान । तिनहिं न काहे पट तरिय, इन समान उपमान ॥ यह सुनकर प्रथम सखी पुनः बोली-- दो०-हैं यद्यपि द्युतिवंत हरि, इन सम रूप निधान । पै अयोग भुजचारि से, किमि पटतरिय समान ॥ तब तीसरी सखी बोली-- दो०-तौ विधिना को लीजिये, तेजवान गुणवान। वे काहे नहिं ह्वै सकैं, सखि इनके उपमान ॥ तीसरी सखी का उत्तर देते हुए प्रथम सखी बोली--दो०-तेजवान

द्वितिवान हैं। औ गुणवान महान । पै उनके मुख चारि हैं, अस्तु न भल उपमान ॥ यह सुनकर चौथी सखी बोली कि--दो०-अति समर्थ सब काज में, श्री शंकर भगवान। क्यों न कहति फिर ऐ सखी, उनको ही उपमान ॥ यह सुनकर प्रथम सखी बोली-- दो०--काह कहति है बावरी, पंचमुखी शिव जान। हैं सकते कैसे कहो वे इनकी उपमान ॥ फिर उस प्रथम सखी ने उन सबके प्रश्नों का एक साथ उत्तर दिया--सवैया-कमलापति के भुज चारि सखी, कमलासन के मुख चार सुनी हैं। त्रिपुरारी जो काम जरावन हार वहू मुखपंच के पूर धनी है ॥ शचीपति के अस रूप कहाँ, नहिं देवन में कोउ रूप धनी है। राजकिशोर महाछवि धाम की, सुन्दरता अतिनीक बनी है ॥ तब अन्य सखियों ने कहा कि दो०-काह बावरी सी बको, ये अति रूप अमेय। उपमा कैसी जगत में, हैं न सकत उपमेय ॥ वय किशोर सुषमा सदन, श्याम गौर सुखधाम। अंग अंग पै वारिये, कोटि कोटि शतकाम ॥ तब तक कोई अन्य पाँचवीं सखी कहने लगी कि--कवित्त--जैसे अवधेश के कुमार प्यार करन योग, ऐसी ही हमारी मिथिलेश की कुमारी हैं। उपमा में विष्णु कहूँ सो तो भुजचारि सखि, विधि को बताऊँ तो वे भी मुख चारी हैं ॥ शंकर की समता जो इनकी गिनाऊँ अलि, मन में तू विचारै वे विकट वेषधारी हैं हैं ॥ इनके सम येई हैं चित्तवीच आनो वीर, राम घनश्याम सिय बिज्जु द्युतिकारी हैं॥ सुन्दर वर नारी मन काह धौं विचारी तुम, पीतपट धारी पर कोटि काम नारी है । ताड़का को मारि कीन मुखिमख रखवारी इन, मगमें मुनि गौतम की नारि हूँ को तारी है॥ जब सों निहारी या रूप को पियारी नैन, भई मैं चकोर वह चन्द्र उजियारी है। हौं तो गँवारी नारि बात पै विचारी कहूँ, राम घनश्याम सिय बिज्जु द्युतिकारी है॥

तब छटीं सखी ने कहा-[कवित्त]--आये वीर देशन विदेशन के भूप द्वार, रूप औ स्वरूपवान एक एक भारी है। योग वर जानकी के येई और कोउ नाहि, येही है अंदेशो प्रण कठिन रावधारी है ॥ जोरी कैसी जोरी विधि देखले विसूरीराम प्रीतम वसन्त सिय हरी फुलवारी है । नाहिं नाहिं आली मति मेरी मतवाली भई, रामघनश्याम सिय बिज्जु द्वितिकारी है ॥ तब सातवीं सखी सखी कहने लगी---कवित्त---ऐरी सयानी तू भई है दिवानी, मैं लीनी सब जानी यह वीर अति भारी है। लाये मुनि ज्ञानी नृप इनको पहिचानी, अति कीनो सनमानी सुठि सदन में उतारी है ॥ प्रण भूपति ने ठानी भये विधि वश अज्ञानी, जो शंकर धनु तानी सो पावै सुकुमारी है। ये भंजैं धनु पानी या न खंडै सुनु वानी हैं राम घनश्याम सिय बिज्जु द्युतिकारी है । मन के हरनहार दोऊ हैं कुमार सखि, (किन्तु) साँवरो सलोनो कछु टोनो सो डारी है। होनी जो होवै सो होवै पर साँची कहूँ, इनका पुनि दर्शन हम सबको कठिनारी है ॥ हे हो विधाता जो होवैं सियनाथा ये, तो मान यह नाता पुनि अइहैं ससुरारी है। शंकर है साखी क्या बाँकी यह झाँकी है, राम घनश्याम सिय बिज्जुद्युतिकारी हैं ॥ उस सखी की बात सुनकर एक और सखी बोली ।

सवैया- तुमने जो कहा सो ठीक सखी अब ध्यान धरो हमरो बतियाँ । सखि येही सुबाहु मरीच हते नहिं लागत सत्य किहूँ भँतियाँ ॥ रघुराज महाँ सुकुमार कुमार हमार हरैं हिय की गतियाँ । निशि चारिन संग लड़ावत में कस कौशिक की फटी छतियाँ ॥ दो०-जन्म अनेकन की सुकृति, जो कछु होय हमार । तौ ब्याहै वर जानकी, सुन्दर राजकुमार ॥ सवैया-कोई कह्यो धरो धीरज धाम में राम हमैं सुख बोरिहैं बोरिहैं । सो मिथिलाधिप को प्रण बन्धन, वीर विशेषि कै छोरि हैं छोरिहैं ॥ श्रीरघुराज समाज के मध्य महीपन को मद मोरिहैं मोरिहैं । श्याम महाअभिराम बिनाश्रम शम्भु शरासन तोरिहैं तोरिहैं ॥ विश्व की सुन्दरताई समेटि कै, चन्द्रसुशीलता तासु मिलाई । कोमलता लियो कल्पलता की, क्षमाक्षिति छीनि दियो तेहि छाई ॥ जौन विरंचि रचीं सिय मूरति, श्री "रघुराज" भरी निपुणाई । सो विधि साँवरी मूरति सोहनी, मोहनी मूरति दोन्यों बनाई ॥ एक सखी ने कहा कि हम सब तो रूप की रसिका हैं, किन्तु इन राजकुमारों का तो रूप ही ऐसा अलौकिक है कि--चौ०-कहहु सखी अस को तन धारी । जो न मोह यह रूप निहारी ॥ तब किसी सखी ने कहा-- चौ०-ये दोऊ दशरथ के ढोटा । बाल मरालनि के कल जोटा ॥ मुनि कौशिक मख के रखवारे । जिन रन अजिर निशाचर मारे । श्यामगात कल कंज विलोचन । जो मारीच सुभुज मद मोचन ॥ कौसल्या सुत सो सुख खानी । नाम राम धनुसायक पानी ॥ गौर किशोर वेष वर काछे । कर शर चाप राम पाछे ॥ लछिमन नाम राम लघुभ्राता । सुनु सखि तासु सुमित्रामाता ॥ देखि रामछवि कोउ असकहई । जोग जानकिहि यहवर अहई ॥ जौं सखि इनहिं देख नरनाहू । पन परिहरि हठि करइ बिबाहू ॥

वार्ता तब किसी सखी ने कहा कि श्री जनक जी ने इनको देखा है, वह इनको पहचानते हैं, मुनि विश्वामित्त के साथ आदर पूर्वक इनका बहुत सनमान किया है । चौ०-सखि परन्तु पन राउ न तजई । विधि बस हठ अबिबेकहि भजई ॥ तब किसी सखी ने कहा कि यदि विधाता सबको उचित फल देने वाले भले हैं, चौ०-तौ जानकिहि मिलिहिं बर एहू । नाहिन आलि इहाँ सन्देहू ॥ जौं विधि बस अस बनै संजोगू । तौ कृतकृत्य होहिं सब लोगू ॥ यह सुनकर कोई और सखी कहने लगी बहिन यह ठीक है कि यह साँवरे राजकुमार हमारी लाड़िली श्रीकिशोरीजी के योग्य हैं किन्तु बीच में शंकर जी का कठोर धनुष भी तो व्यविधान हो रहा है । क्योंकि श्यामले राज-कुमार अभी किशोरावस्था में परम सुकुमार हैं । ऐसा सुनकर- सवैया)- कोई कही मटकाइके नैन, चढ़ाइ के भौंह सुशीश डुलाई । तू ना सुनी री प्रभाव कुमार को, भाषति हौं जो पै मैं सुनि आई ॥ येई अबै गये गौतम की कुटी, सो इनके पग की रज पाई ॥ "श्रीरघुराज" भयो बड़ काज, अहल्या सु पाहन ते प्रगटाई ॥ अस्तु आप सब यह संकोच न मानिये कि परम सुकुमार श्याम सुन्दर से शिव धनुष नहीं टूटेगा ॥ आप सब निश्चय

ही मानिये कि ये साँवरे राजकुमार ही शिव धनुष तोड़कर श्रीजानकीजी को वरण करैंगे। परस्पर में सखियाँ इस प्रकार वार्तालाप कर रहीं हैं राजकुमार धीरे धीरे आगे चले जारहे हैं। अट्टालिकाओं पर से पुष्प वृष्टि करती हुई वे सब गाती हैं—

वर्षहिं सुमन नगर नागरिया। करि उद्देश्य रामरघुवीरहिं, चितवहिं चतुरि गुणन आगरिया। प्रीति रीति पहिचान मुसुकि मुख, निरखत श्याम सुभग आटरिया। लखि लखि मिथिला वाम प्रहर्षहि पूजहिं नेह नयन गागरिया। जहँ जहँ जात कुँअर दशरथ के, तहँ तहँ परमानँद पागरिया। डगर-डगर प्रति जगर-जगर जग, धूम मची पुर सुख सागरिया। कहर-कहर कर हृदय सबहिं को, ज्ञान भवन भे रस आकरिया। हर्षण प्रेम प्रवाह वहे सब. जड़ चेतन जग ते जागरिया॥

अहह तात अवलोकहु कैसी अनुपम बनी बजार। अनुपम बनी बजार यहाँ की शोभा अकथ अपार॥ ऊँचे ऊँचे भवन सोहावन, राजत दुहुँ दिशि अति मनभावन, चित्र विचित्र ललित छवि छावन। मध्य मार्ग विस्तृत सुरम्य, तर उड़त सुगन्ध फुहार॥ महलन ऊपर लसत अटारी रुचिर झरोखा रचे सँवारी तिनमें खड़ी लखहि सुकुमारी। हरषि सुमन वर्षावैं मृदुहँसि मेरी ओर निहार॥ भैया इधर तो देखिये-निज निज सबहिं दुकान सजाई। अमित द्रव्य मणि रत्न सोहाई॥ सकल बस्तु बिन मोल बिकाई॥ कोटि कोटि शत धनद यहाँ की सम्पति पर बलिहार॥ शुचि सुशील सुन्दर नरनारी। ज्ञानी परमतत्त्व अधिकारी। भाव सहित सेवत त्रिपुरारी॥ बिमल विराग हृदय में सबके भरे भक्ति भण्डार॥ भैया यहाँ का वैभव ऐसा क्यों न हों, क्योंकि—श्रीविदेह नृप यहि पुर फेरे जिनहिं मुनीश रहत नित घेरे, सुनत विविध उपदेश घनेरे। शुकसनकादिक नारदादि मुनि आवत जिनके द्वार॥ रच्यो नगर अतिसय मनहारी। याहि निरखि मैं भयों सुखारी। पायेउँ मन में मोद अपारी। ऐ 'गुनशील' यहाँ की सुषमा वरणि-को पावै पार॥ सखाओं के साथ नगर देखते हुये श्रीरामजी हलवाइयों की बाजार में गये, तो कोई हलवाई दूर से ही देखर बोला--

कवित्त-गर्मागर्म पूड़ी औ कचौड़ी नर्मानर्म नाथ खाइये कुमार डाला अनुपम मशाला है। पेड़ा औ बरफी कलाकन्द औ गुलाब जामुन बालूशाही खुर्मा भी अनेक रंग वाला है॥ लड्डू दलबेशन औ मोतीचूर मगदल हैं नुकती नुकीली अभी सीरे में डाला है। पापर अनरसे हैं तिलौरी औ दनौरी अवलोको माल बनो शुद्ध उत्तम निराला है॥ श्रीरामजी आगे बढ़े तो वस्त्रों की बाजार में पहुँचे, देखकर एक बजाज कहने लगा—कवित्त-- देखो महाराज कैसे वस्त्र हैं सजाये आज सासन गुल लेट जामदानी थान लाये हैं। नैनू औ सैनू गुलबदन जरी वफ्त नाथ कीन खाप जाली लेट सामने सजाये हैं॥ ढाँका का मलमल अति बाँका है लखो देव आपके हेतु दैके आर्डर मँगाये हैं। तोजिये दया निधान मोको निज दास जानि, अहोभाग मेरे जो आप यहाँ आये हैं॥ श्रीरामजी

आगे बढ़कर पुस्तकालय के सामने गये, दूकानदार कहने लगा--कवित्त -वेद औ पुराण की अगणित पुस्तकें नाथ, शुद्ध साफ सुन्दर अनेकन सजाई हैं। चालीसा अनेक औ नाटक सब नये नये, सिंहासन बतीसी औ पचीसी भी लगाई हैं॥ आयुर्वेद धनुर्वेद खोजि खोजि वेद औ लयेद भाँति भाँति कई मेल की मँगाई हैं॥ इस प्रकार नगर देखते हुए आगे बढ़े तो लक्ष्मणजी ने कहा--दो०--अटा अटा पर तियन की, कैसी छटा दिखाय। मनहुँ घटा घन विज्जुगण, प्रगटत औ छिपि जाय॥ श्रीरामजी एवं श्रीलक्ष्मणजी सखाओं के साथ समस्त नगर देखते हुए, चौ०-पुर पूरब दिशि के दोउ भाई। जहाँ धनुष मख भूमि बनाई॥ पुर बालक कहि कहि मृदु बचना। सादर प्रभुहिं दिखावहिं रचना॥ श्रीरामजी ने बालकों से पूछा-- रतन पाँति दरशात भल, बिच बिच लाल प्रवाल। केहि हित ये वर वेदिका, विरची जनक भुआल॥ शुचि सुन्दरता सुघरता, अतिशय रहे पसार। केहि हित ये चित चेत सों, विरचे रचे अगार॥ सुर विमान से लगत ये, जगत प्रभा जनु भान। कौन हेतु निर्मित भयो, अति उचान मंचान॥ सुठि शोभा लोभत मनहिं, छोभत छबि लखि काम। कौन हेत अभिराम ये, विरचे कंचन धाम॥

एक बालक श्रीरामजी का हाथ पकड़कर कहता है कि-सवैया--कैसी फराक फबी छवि सों, कवि सों उपमा नाहिं जात विचारी। मोहि लिए मुनि लोगन के मन, मंजुल सों मुकता गजकारी॥ शंभु शरासन थापिवे को, लखिए शुभ वेदिका चारु सँवारी। प्यारी लगै तिहुँ लोकन को, यह प्यारी छटा अवधेश विहारी॥ दूसरा बालक राजत उन्नत मण्डली मंच भलो गज दन्तमई शुभ राशी। देखि सिहात सबै "ललिते" छिति फैलि रही महि चन्द्रप्रभासी॥ आइ इतै अवलोकिय राम जू, चैन कि मानो मैन प्रकासी। राज समाज विलोकिवे को सबै, वैठिहैं आय यहाँ पुरवासी॥ तीसरे बालक ने कहा बन्धुवर इधर तो देखिये-- सवैया—चित्त चुरावनहार भले, मणि चित्रित चित्र बने अभिराम हैं। त्यों "ललिते" अति ऊँचे लसें, निजहाथन सों विरचे जनु काम हैं देखि थके विधि से हरसे बहुँ, आनन्द ये उपचावत राम हैं। देखिबे को महिपालन को पुर वालन हेतु बने यह धाम हैं॥ दो०-बाघम्बर मृगचर्म ये, बिछे आसनन माहिं। जहाँ वैठि ऋषि मुनि निरखि, अति आनन्द समाहिं॥ चौथे बालक ने कहा-- दो०--कंचन मणिमय महल ये, सुषमागार अपार। जहाँ जननियुत जानकी सखिन समाज सम्हार॥ वैठि लखैंगी धनुष मख, हे रघुवीर सुजान। नृपविदेह समकक्ष नृप, तिन हित ये मंचान॥

धनुषयज्ञ भूमि देखनेके बाद श्रीरामजीने बालसखाओं से कहाकि बन्धुवर अब हम दोनों भाइ श्रीगुरुदेवजी के पास जायेंगे आप सबभी अपने अपने घरको जाइये। यह सुनकर बालकों ने कहा कि मित्रवर आपने समस्त नगर भ्रमण किया, किन्तु हमारे घर पर पधार कर उसे पावन नहीं बनाया, अस्तु आप कृपा करके हमारे घर

पर पधारिये। बालकों भाव के प्रेम वश श्रीरामजी उन सबके घर गये, उनका स्वागत स्वीकार किया। तदन्तर उनसे विदा माँगी, तब सब कहने लगे कि-सवैया--छोड़त काहे प्रभू निज दासन, का अपराध हृदय में विचारो। सेवा करैं हम साथ रहैं, अवलोकैं सदा मुख चन्द्र तिहारो॥ कैसे जियें अवलोके विना, प्रभु का अपराध हमार निहारो। आप हैं दीन दयाल कृपाल, कृपा करि बैन न ऐसे उचारो॥ दूसरे बालक ने कहा कि सवैया—ये प्राण मुखाम्बुज का तुम्हरे करि ध्यान सदा मतवाला रहूँ॥ हृदय से लगाके तुमहिं छवि धाम, मिटाता हृदय की ज्वाला रहूँ॥ मुख चन्द्रहिं बारहिं बार विलोकि, पिन्हाता सुअश्रु की माला रहूँ। इस रूप की मंजुल माधुरी का, दिनरात पिए रस प्याला रहूँ॥ तीसरे सखा ने कहा कि--लखता यही रूप तुम्हारा सदा छवि सिन्धु में नित्य नहाया करूँ। नख से सिख में सिख से नख लें, दृग युग्म "किशोर" घुमाया करूँ। कर कंज गहे मिथिलापुर के नित नूतन दृश्य दिखाया करूँ। महामोद में मित्र भुलाया रहूँ, हँसता तुम्हें खूब हँसाता रहूँ॥

तब श्रीरामजी ने कहा; भैया बालक वृन्द सुनो! सवैया—जाता हूँ बन्धु तुम्हें तजिके, पर प्राण तुम्हरे ही साथ रहेंगे। जिनको एक बार गहा तो गहा, अब हाथ वे मेरे ही हाथ रहेंगे॥ अपनाया जिन्हें उर लाया जिन्हें, उनका जपते गुण गाथ रहेंगे। अब भूलेंगे कैसे गोविन्द तुम्हें, पद की रज से सदा माथ रहेंगे॥ सुनिये बन्धुवर-मुझको कोइ ब्रह्म अखण्ड कहे, निज दासों के दास का दास हूँ मैं। जिसने अपना इकबार कहा, अपनाता उसे सहुलास हूँ मैं॥ मुझे बाँध सकै न तपी तप से, बँधता इक प्रेम की पाश हूँ मैं। सर्वस्व लुटाके न "गोविन्द" तोष, सदा रहता तिन पास हूँ मैं॥ बन्धु न भय मोहिं है मृगराज सों, दैत्यबली बहुतेरे सँहारे। इन्द्र उपेन्द्रहु से भय नाहिन, कालहु कोटिन काहि प्रचारे॥ भय नहिं रंच न तात न मात सों, भय नहिं होत भये दुख भारे। पै भय होत "गोविन्द" गये, गुरुदेव समीप अबेर विचारे॥ किसी बाल सखा ने कहा-- दो०--हम सबको तजकर प्रभो, आप मुनी ढिग जाय। लहि दुलार मुनिराज को जैहो हमहिं भुलाय'। तब श्रीरामजी ने कहा—

सवैया—मित्र मन मानस में पाकर सनेह नीर, कमल समान सदा फूले हैं औ फूलैंगे। चक्रवर्ती ताज क्या तीन लोक राजसुख, प्रेम के मुकाबले न तूले हैं न तूलेंगे॥ "बिन्दु कवि" अनोखे चोखे भोले भाले भक्तों के, टेढ़े सूधे बचन कबूले हैं कबूलेंगे। कारबार जगके हजारै बार तजे किन्तु, प्रेमियों के प्यार को न भूलेहैं न भूलेंगे॥ इस प्रकार चौ०--कहि बातें मृदु मधुर सोहाईं। किये बिदा बालक बरियाई॥ दो०-- सभय सप्रेम विनीत अति, सकुच सहित दोउ भाइ। गुरु पद पंकज नाइ शिर, बैठे आयसु पाय॥ शीश सूँघि कर फेरि शिर, दै अशीष उर लाय। अति सप्रेम मुख चन्द्र लखि, परमानन्द समाय॥ पूछत मुनि लालन कहो, कैसो मिथिला धाम। हाट बाट अरु धनुषमख रचना

रची ललाम ॥ तब श्रीरामजी ने हाथ जोड़कर कहा--काह कहौं छवि नगर की सुषमा-गार अपार। नर नारी सब अति सुभग, रूप शील वजियार ॥ नगर डगर अरु भवनवर बहुसर भरे सुनीर। ललित लतायुत विटप बहु, तिन पर बोलत कीर ॥ छंद-रंगभूमि अति सुभग जहाँ मख भूमि बनाई। तहँ की रचना ललित कलित को सकै बताई ॥ स्वर्ण रतन मणि जड़ित विपुल वर भवन बनाई। जहाँ बैठि पुर नारि लखैं धनु मख हरषाई ॥ मध्य विमल वेदिका जहाँ धनु धरेउ बनाई। अनुपम धनु मखशाल ज्योति जगमग प्रगटाई ॥ इस प्रकार वार्तालाप करते हुये सूर्यास्त हो गये। तब सभी ने सन्ध्या वन्दन किया। प्राचीन इतिहास एवं कथायें सुनते आधीरात बीत गई। चौ० मुनिवर शयन कीन तब जाई॥ लगे चरण चापन दोउ भाई॥ जिनके चरण सरोरुह लागी। करत विविध जप जोग विरागी ॥ ते दोउ बन्धु प्रेम जनु जीते। गुरु पद कमल पलोटत प्रीते ॥ बार बार मुनि आज्ञा दीनो ॥ विश्वामित्रजी ने कहा वत्स श्रीरामभद्र एवं लक्ष्मणजी आप दोनों भाई अब शयन करिये आप दोनों बालक हैं, नगर भ्रमण में श्रम होगया होगा, हम तो यहीं बैठे रहे अस्तु हमें कुछ भी थकावट नहीं है। तब श्रीरामजी ने कहा, नहीं नहीं गुरुदेव हमें श्रम नहीं हुआ, हम तो बालकों के साथ श्रीअवध में भी खेलते ही रहते थे। आप अवश्य आश्रम से यहाँ तक आने में श्रमित हो गये होंगे। दो०-नाथ नहीं श्रम मोहिं कछु, परसत प्रभुपदकंज। पावत परमानन्दमन उठत मनोरथ मंजु ॥ नाथ हमारे बड़भाग गुरुपद सेवा पाय। हौं सब भाँति कृतार्थ अब सोइय प्रभु हरषाय ॥ पुनः विश्वा-मित्रजी ने कहा वत्स अब सो जावो। तब गुरु चरणों में प्रणाम करके श्रीरामजी शयन किये, तब श्रीलक्ष्मणजी चरणसेवा करने लगे। सवैया--पदकी रज लै कहुँ शीशभरैं कबहूँ पद पंकज शीश धरैं। मन माहिं विचार करैं क्षण ही क्षण, को जग मोसम मोद भरैं ॥ परिचारक लाखन हैं घरमें, तिनको सुख लूटि हमें अफरैं। भरतौ रिपुसूदन श्रीरघुराज, न आज बराबरी मोरि करैं॥ तब श्रीरामजी ने कहा भैया लक्ष्मण अब आप भी सो जाओ। रात्रि बहुत व्यतीत हो गई है। चौ०-पुनि पुनि प्रभु कह सोवहु ताता। पौढ़े धीर उर पद जल जाता ॥ दो०-उठे लखन निशि विगत सुनि, अरुन सिखा धुनि कान। गुरु ते पहिले जगतपति, जागे राम सुजान ॥ ब्रह्ममुहूर्त में मुर्गा का शब्द सुनकर श्रीलक्ष्मणजी उठकर श्रीरामजी के चरणों में मस्तक रखकर प्रणाम किये, श्रीरामजी ने दुलार पूर्वक अपना कर कमल श्रीलक्ष्मणजी के शिर पर फिराते हुए हृदय से लगाकर प्यार किया। पुनः दोनों भाइयों ने श्रीविश्वामित्र जी को प्रणाम किया, मुनि के मनमें वात्सल्य की बाढ़ आ गई। दो०-निरखि राम मुखकंज छवि, सादर हृदय लगाय। शिर सूँघत अति प्रेम सों मुख चूमत दुलराय ॥ फेरत शिर पर कर कमल, दै अशीष हर्षाय। मंगल मन्त्र उचारहीं, परमानन्द समाय ॥ चौ०-सकल शौच करि जाय नहाये। नित्य निवाहि मुनिहिं सिर नाये ॥ समय जानि गुरु आयसु पाई। लेन प्रसून चले दोउ भाई ॥ विश्वामित्र

जी ने श्रीरामजी से कहा- दो०--हरि पूजन हित फूल फल, तुलसी दलहि उतार । ले आइय नृप बाग सों, प्रमुदित रामकुमार ॥ चरणविन्द गवनत भये, रामलखन दोउ वीर। करत परस्पर बतकही, गये बाग के तीर ॥ चौ०-भूप बागवर देखेउ जाई । जहँ बसन्त ऋतु रही लोभाई ॥ श्रीरामजी ने श्रीलक्ष्मणजी से कहा--दो०-लखन लखो यह बागवर, सब जग में छितुवन्त । बास करत या में सदा, मानो सुभग बसन्त ॥ यह सुनकर लक्ष्मणजी ने कहा--दो०-अति अनूप छितिवन्त यह, वरणत सुमति सकाति । पवन लगे छहराति छवि, ललितलता लहराति ॥

सवैया--तन दीने वितान सों बेलि बढ़ी, उड़ैं भौंर हजारन डारन में। "ललिते" तरुपुंज लसें बगरे सगरे जगके सुखकारन में ॥ निकसे विकसे नवपल्लव ये, प्रगटे सुखमान के जारन में । टपके मकरन्दन सों झपटे, लचके ये प्रसून के भारन में ॥ तब श्रीरामजी ने कहा--दो०-गुल्मलता विकसे लखो, करैं सुमन आधोन ॥ भौंर गिरैं मद मत्त यह, फिरैं चमेलिन लीन ॥ सवैया-दौर धरैं वर मंजरी मंजु, करैं बह प्रीति पराग भरे भिरैं । त्यों 'ललिते" लखि लोनी लतान, वितान तने गुलदेंचन से घिरैं ॥ चोप से चाव चढ़े चित चंचल, चाँदनी चारु चमेलिन पै फिरैं । मोद भरे अति गैशन पै, अति लौसन सों गुलसौसन सों घिरैं ॥ तब लक्ष्मणजी ने कहा नाथ इधर तो देखिये । सवैया--बगरे जड़े माणिक सों बरफूलि, रहे भले गुल्मलता गँसिकै । डगरे गिरे भौंरे भरे रजपीत, भये बसके रसके रसिकै ॥ ऊपरे झुकेये लपके "ललिते" जो रहे चहुँ ओरन सों लसिकै । मन कैसे कढ़े बढ़े आनन्द सों, गुलचीन न पेंचन में फँसिकै ॥ तब श्रीरामजी बोले--दो०- सुभग साँवरी गैश यह, निरखत मन हर्षात । या अनूप वर बाग की, छिति बरनी नहिं जात ॥ सवैया--बोलती कोयल माती जहाँ, बहु भाँतिन बोलिन हीसों घनो रहै । त्यों "ललिते" मधु लोभी मलिन्द, भरे वह गुंजन ठाठ ठटो रहै ॥ कोऊ नहीं उपमान तिहूँपुर, शोभन सों सुखमान सनो रहै । श्रीमिथिलाधिप के वर बाग में बारहु मास बसन्त बनो रहै ॥ पुनः लक्ष्मणजी बोले, दो० लखो नाथ अनुराग युत, अति सुषमा को जाल । लखे ताल छवि गात सह, विहरै, विपुल मराल ॥ सवैया-झूमे झुके तरुपुंज रसाल तमालन जालन में छिति साजैं । त्यों "ललिते" कचनार अनार प्रसूनन भार अभार सो राजैं । कोकिल कीर कपोतन के कुल, बोलन सों मधुरी ध्वनि साजैं । श्रीमिथिलाधिप के वर बाग में, बारहु मास बसन्त बिराजैं ॥

तब श्रीरामजी ने कहा-सवैया—मोद बढ़ाय रही उर में, यह शोर घनो करै कोयल माती । । फूले पराग खिले तरु पै, घुमड़े घनी शोभन भौंनन पाँती ॥ रागिनी जाग रही 'ललिते", सुनि क्वैलिया कूकन को हरषाती । पाइके धीर सुनीर समीर लखो यह कैसी लता लहराती ॥ श्रीरामजी के वचनों को सुनकर लक्ष्मणजी बोले-कवित्त--बगरे लतानयुत सिगरे विटपवर, सुमन समूह सोहैं आगर सुवेश को । फूलन के भार डार

डार पै अपार छिति, कोकिल की कूक हरै त्रिविध कलेश को ॥ कहत बनैना कछु 'ललिते' निहारो इतै, उमड़ि परौ है सुख मानो देश देश को। जनक सो राजत जनक जू को बाग तो यह, नन्दन सो लागै मन नन्दन सुरेश को ॥ श्रीरामजी ने कहा हाँ हाँ भाई ऐसा ही है। इधर तो देखिये-कवित्त--विकसे बनज बान बगरि बहार वारे, बोलत विहंगवर विपुल सुवेले लेत। भारी भीर भौंरन भरी भरमाई भूमि भरे, भार भौंरे भये आनन्द सुमेले लेत ॥ मणिन सँभारे घाट मोहन मुनिन मन, ललित अनूप रूप बारि छिति फैले देत। सुषमा समूह सरसात सरिस मानसर, सम्पति समूह सुख सुषमा सकेले देत ॥ यह सुनकर लक्ष्मणजी बोले-दो०-अनुपम छवि यह बाग की, बरनि को पावै पार। दूरिहिं ते सुषमा निरखि, प्रगटत मोद अपार ॥ दोनों भाई बाग के प्रधान द्वार पर पहुँचकर चारों ओर देखकर कहते हैं कि, दो०--को माली यह बाग को, अधिकारी छितिवान। सो जो कहै गुरु हेतु तो, लेहिं फूल मतिमान ॥ श्रीरामजी का सुधा विनिन्दक सरस प्रिय मधुर शब्द सुनकर माली आया, और हाथ जोड़कर बोला, सवैया--माली हूँ मैं मिथिलाधिप को, सो करौं नित फूलन की रखवारी। राजकुमार कहाँ के लला, पगधारि पवित्र कियो फुलवारी ॥ छैल छबीले नुकीले दोऊ आँग अंग पै कोटिन काम है वारी। तुलसीदल पुष्प उतारि जिते, जोइ दीजै रजाय सो लावौं उतारी ॥

श्रीरामजी बोले—सवैया-एहो महीपति माली सुनो, गुरुपूजन के हित फूल उतारन। आये हतै हम बन्धु समेत, उतारैं प्रसून न होइ निवारन ॥ कैसे कहे बिन फूल चुने, मिथिलेश की वाटिका के मन हारन। बस्तु बिरानी को पूछे बिना, "रघुराज" जु लेब न वेद उचारन ॥ तब माली ने हाथ जोड़कर कहा—सवैया-तुम श्यामल गौर सुनो दोउ लालन, आये कहाँ ते उरायन में। इत कौन पठायो दया नहिं लायो, सु फूलन तोरि उपायन में ॥ मिथिलेश की वाटिका में विहरो, हियरो हरि हेरि सुभायन में। "रघुराज" कहीं गड़ि जैहैं लला, पुहुपान की पाँखुरी पायन में ॥ यह सुनकर श्रीरामजी बोले-- दो० हम कुमार अवधेश के, आये मुनि के साथ। गुरुपूजन हित पुष्प दल, तोरैं अपने हाथ ॥ माली ने कहा--सवैया-कैसे को तोरौ प्रसून लला, इन कोमल हाथन टूटिहैं ना। वेली लतान की कंटक जो, गहैं पीत पिताम्बर छूटिहैं ना ॥ चाँदनी चन्द मुखार पड़ैतो, कमोदिनि की पौ फूटि है ना। अंग गुलाब के रंग लखे, अलि कैसे कहे रस लूटिहैं ना ॥ दूसरा माली बोला—दो०-कैसे तोरहुगे सुमन, सुमन न मानत भोर। कंटक कोमल करन में गड़ि जैहैं बरजोर ॥ तीसरे माली ने कहा—कवित्त-चन्द्र अनुहार तो निहार के मुखारविन्द, बावरो चकोर कहो चोट न लगावहीं। बिम्बाफल के समान अधारन की ललाई देखि, आय आयकीर कहीं चोंच ना चलावहीं ॥ साँवरो बदन श्याम घनके समान मान, मोरहू लतान में शोर ना मचावहीं। टूटैं कैसे कोमल करन सों कमलफूल, ताके क्यों कमल फूल भौंर पुंज धावहीं ॥ चौथे माली ने कहा – भैया इन राजकुमारों के

हो अंगमें मुझे तो एक विचित्त फुलवारी जैसी फूली दीखती है, आप भी ध्यान देकर देखिये। कवित्त चोटी वसन्त भाल भृकुटी वसन्त, नैन नासिका वसन्त औ कपोल बिलसन्त हैं। वेलिन वसन्त औ चमेलिन वसन्त, गुलछेर में वसन्त मुचुकुन्द में वसन्त हैं॥ पगमें वसन्त औ जंघमें वसन्त, पुनि अधर में वसन्त ग्रीवा माझमें वसन्त है। नखपै वसन्त नखसिख पे वसन्त, कौन पावै आदिअन्त राम अंगन वसन्त है॥

पाँचवा माली बोला--गजल-कोमल किशोर गात हो अवधेश दुलारे। फूले फले हैं फूल सभी अंग तुम्हारे॥ लाला करै कसाला है मुख लाल के ऊपर। सम्बुल को ऐंठ होती है लखि केश घुँघारे॥ बेला जुही चमेली नखों पर है वारियाँ। नरगिस को नहीं चैन तेरे नयन निहारे॥ भृकुटी कमान देखिके डर खाते हैं टेसू। भौंरे गुलाब छोड़ कपोलों पै सिधारे॥ अब फूल कौन बाकी है कहिये तो लाल जी। तोड़ोगे उनको कैसे जो हैं आपसे हारे॥ गजरे बनाके हमने धरे हेतु तुम्हारे। कीजै कबूल फूल दया करके हमारे॥
दो०-हम सब सेवा में खड़े, सेवक भूप किशोर। जो-जो आयसु दीजिये,सो-सो लावैं तोर॥
छठाँ माली बोला--सवैया-तोड़ेंगे आप तो एक अनार पै दन्त निहार हजार गिरैंगे। जंघ पै दंग रहै कदली,नहिं काटे बिना फिर फेरि फरेंगे॥ अम्ब लवम्ब कदम्ब नरंग,सो अंग के रंग पै लाज मरैंगे। कौन को तोड़िहौ छोड़िहौ कौनको, डाह बिथा सब झार झरैंगे॥
सातवें माली ने कहा--सवैया-कहो कुन्द कली कचनार कदम्ब, कमोदिनि काम कनैर गनाऊँ। मौलसिरी और मोतिया मालती, मूँगिया मोगरा माला मगाऊँ। गूँथूँ गुलाबन के गजरे, गुलदाऊदी गेंदके गेंद बनाऊँ। चाँदनी चम्प चमेलिन चारु, चहै चित जोई सोइ चुन लाऊँ॥ आठवाँ माली बोला--अवलोकत ही नख पाँतन को बक पाँत सबै सरसे दुरिहैं। कच घूँघर वाले विलोकत ही, अलि पुष्पन से मुँह को मुरिहैं॥ यह लाल कपोल को देख लता, लतिकान से से पुष्प सबै गिरिहैं। अँग अँग निहारि के फूल झरैं, फिरि रावरे काह कहो तुरिहैं॥ फूली लतान ठठोली करैं, वहि अंचल को अरुझैहैं कहूँ। श्यामछटा लखि श्यामघटा भ्रम, मोर समूह उमैहैं कहूँ। कोमलगात प्रसूनन से रवि तेज लगे मुरझैहैं कहूँ। पाँखुरी पुष्प गिरैं झरिके, अड़िके पग में गड़ि जैहैं कहूँ॥ लखे मुख कंजन को भ्रम जानि चहूँ दिशिते अलिना मड़ि जायँ। लखे अधराबर बिम्बन को, शुक आपस में न कहूँ लड़ि जायँ॥ सुने वरबीन वैन भले, "ललिते" मग में मृग ना मड़ि जायँ। लला करकोमल पाँखुरी तीखी गुलाबनकी न कहूँ गड़ि जायँ॥ नववाँ माली बोल :-

दो०-सुमन तोरि हैं आप क्यों, हम सब तुम्हरे दास। भरि लोने दोने विविध, लैआऊँ प्रभु पास॥ सवैया-- हमेंडर लगता है कि लखे मुखमंजु सुधाकर जानि, चकोर न चोट कहूँ करि जायँ। विलोचन हू वर कंजन मानि, कहूँ भ्रमरावलि ना मड़ि जायँ॥ सिरीस प्रसून झरे जे परे, पगमंजुल मे न दबे गड़ि जायँ। गुलाब रसाल छुये करमें, कहूँ छाल अँगूरिन ना परिजायँ॥ कवित्त--द्रुमन लतानन में मिले

हैं मलिन्द बृन्द, चन्द्र की किरन सी सुहात चारु चन्दनी। भिकुर भकोर मन्द मारुत सुगन्धयुत, ऋतुकेलि कोकिला किलोल कल मण्डनी॥ सरस रसालवर बेलि फैलि रही तैसी, ललित प्रवालसो मनोज ओज मण्डनी। वाटिका विलोकिये ये सुन्दर विदेह वारी कैसी "भूषण" सों अनूप रूप है बनी॥ मालियों की इस प्रकार भाव भरी बातें सुन श्रीलक्ष्मणजी ने कहा—सवैया-कर खैंचि शरसन बान भले, सब काठिनता से भरेइ रहैं। कर अंगुल तान सँभारि सदा, मृदुतानि को दूर करेइ रहैं॥ तन कौच को धारि सदा रन में, निज शत्रुन साथ अरेइ रहैं। द्विज काज गुरू के निरालस हैं, कुल धर्म की वानि धरेइ रहैं॥ तब माली ने कहा—राजकुँवर हम आपके सेवक हैं, यह तो हमारी सेवा है, आपकी आज्ञा के ही अनुसार हम फूल तुलसीदल और फूलों की मालायें सेवा में प्रस्तुत करेंगे। यह सुनकर श्रीरामजी ने कहा--दो०-कहत ठीक सब बैन तुम, हो माली होशि-यार। काज गुरू के हाथ निज लैहैं फूल उतार॥ कवित्त--मालाकार सुनो वेदशास्त्र की मर्याद यह, इष्ट पूजन हेत सौज निजकर सजाइये। पावनता रुचिरता मधुरता हृदय म फ धारि, आलस औ प्रमाद को दूर अति भगाइये॥ निजकर प्रसून जल तुलसीदल फल उतारि, शुद्ध भावना से रचि के भोग को लगाइये। (इसलिये भाई मालाकार) पूजन हित गुरुवर के निजकर हम लैहैं फूल, ऐहो "गुणशील" अब देर ना लगाइये॥ दो०--सुनि इमि रघुवर के बचन, आपस में बतराय। बोले माली कीजिये, जो प्रभु के मन भाय॥ किन्तु इस वाटिका में प्रवेश करने वालों के लिये नियम हैकि वह श्रीकिशोरी जू की जय बोलकर अन्दर प्रवेश करें। अस्तु आप लोग भी श्रीकिशोरीजू की जय बोलिये फिर अपनी रुचि के अनुकूल फूल फल तुलसीदल उतारिये।

तब श्रीलक्ष्मणजी ने कहा कि—दो०--हम रघुवंशी वीरवर, सुयस जगत उजि-यार। जय नहिं बोलत तियन की यह मर्याद हमार॥ तब माली ने कहा ठीक है, आप स्त्रियों की जय नहीं बोलते, किन्तु यह बाग तो श्रीकिशोरीजू का। यहाँ की मर्यादा का पालन करना आपको उचित हैं। क्योंकि आप राजकुमार हैं, आपको राजनीति का भली भाँति ज्ञान है। तब आप यहाँ की मर्यादा का अतिक्रमण करैं, यह आपके योग्य नहीं है। अस्तु आपको श्रीकिशोरीजू की जय बोलकर प्रवेश करना ही आपके योग्य है। श्रीरामजी ने देखा हमें फूल तुलसी लेना ही है, तब विवाद में समय क्यों खोवैं अस्तु श्रीरामजी ने कहा-- कवित्त--जासु जय जनक नरेश हैं जय के पात्र, अपने सुकर्म से आप हीं अभय हो। योग भोग उनके अधीन सब काल रहैं, सुयश समूह क्षितितल में अक्षय हो॥ रामाधीन उनके प्रभाव प्यारी पुत्रिका की, कीरति कदम्ब कलानिधि से उदय हो। जाके गुणशील को प्रशंसा है, विश्व माहिं, प्राण प्यारी श्रीजनक दुलारी जू की जय हो॥ तब माली ने लक्ष्मणजी से कहाकि आप भी जय बोलिये। श्रीलक्ष्मणजी ने कहा-- दो०-जय जय श्रीमिथिलेश जू, शील गुणन आगार। तासु सुता श्रीजानकी, सदा

रहे जयकार ॥ तब दोनों भाई बाग में प्रवेश कर फूल उतारते हुये बाग की शोभा देखते हैं। श्रीरामजी ने कहा भैया यहाँ की शोभा क्या कही जाये —

गुच्छ कलशासे त्यों वितानन कशासे खासे, पुहुप अबासे बहुरंग के प्रकाशे हैं। कलपलतासे लतावृन्दन विलासे झुके, अजबकितासे भूमि लोरनके आशे हैं॥ शिशिरतरासे ऋतुपतिकी हवासे हरे, किशलै निकासे फूले हीरन हरासे हैं। भनै, "रघुराज" कल्पवृक्ष उपमासे फले, अतिभनयासे तरुकरत तमासे हैं॥ दो०--मधु ग्रीषम वर्षा शरद सुखद शिशिर हेमन्त। निजगुण निजथल प्रगटऋतु, सब थल बसत बसन्त॥ षटऋतु के मन्दिर बने, षटऋतु प्रकट प्रभाव। तामें अधिक प्रभाव करि, मोहिरह्यो ऋतुराज॥ कवित्त-पल्लव लसत पिकवल्लभ के पन्नासम, शाखाभूमि लोरे फल फूलनके भाराहैं। कुंज मंजुमहाँ मनरंजन मुनीशन-के भौंरनके कुंजन में गुंजन अपारा हैं॥ विछे वसुधामें झरे फूलनकी सेज हीसी, पवनप्रसंग परिमल को पसारा है। चैत्र रथ कामबन नन्दन की नाकी छवि, कहैं "रघुराज" राम कामके सँभाराहै॥ भैया इधर तो देखिये--कवित्त—तालन तमालनके तैसहिन तालनके, रुचिर रसालन के जालमनभाये हैं। हेम आलवालनके रजत देवालनके, आलय लोकपालनके लोकन लजाये हैं॥ दिल देवबालनके देखते बिहालहोत, षटऋतु कालनके फूलफल छाये हैं। और महिपालनके बालनकी बातें कौन, "रघुराज" कौशलेशलालन लोभाये हैं।

दो०--राजत अतिसय रुचिर तरु, मनहुँ चन्द्रकी ज्योति। कनकलता लहरैं ललित मनु रविदीति उदोति॥ लक्ष्मणजी ने कहा---कवित्त--कंचन कियारिन में फटिक फराश फाबैं, तामैं झरैं मालती सुमन मनुताराहैं। बदन कुरंगनके विविध विहंगनके, मुखन मतंगन तुरंगन फुहाराहैं॥ केते कुंजभौन लताभौन लोने लोनेलसैं, वल्लिन वितान त्यों निशानहूँ अपारा हैं। भनै 'रघुराज" नवपल्लवित मल्लिका के अमल अगारा हैं सुनारा हैं दुआरा हैं॥ श्रीरामजी बोले--- कबित्त---कीरन की भीर कामनीन के सहित सोहैं, कूजि रहे कुंजकुंज मुनियन मनहारने। कोकिला कलापैं चित्तचोरत अलापैं परैं, मनकी कलापैंथापैं थिरता अपारने॥ भनै "रघुराज" केकीकूकैं सुनि चूकैं चित्त करत चकोर चारिओरहूँ विहारने। पिय की पुकार त्यों पपिहा की पुकारैं हिय, हारैं हर हारैं बेशुमारैं देवदारने॥ रसिया--भैया लखन विदेह बागकी देखो कैसी छटा अपार। कैसी छटा अपार बहे जहँ सदा बसन्त बहार॥ सब तरु ललित किशोर सोहाये, जिनहिं निरखि सुररूख लजाये, लता-ललकि बिटपन अरुझाये। नव पल्लव फल सुमन मनोहर शोभा अकथ अपार॥

बोलत कोयल अतिप्रियबानी, मनअभिराम श्रवण सुखदानी मानहुँ परमप्रेमरस सानी। कुंजन मोरनटत पपिहा नित पिउ पिउ करत पुकार॥ बेला जुही गुलाब सोहावन, कुन्द मालती अति मनभावन, चम्पा और चाँदनी पावन। गेंदा और निवारी फूली सुन्दर लगे अनार॥ बागमध्य सर अतिमन हारी, तामधि बिकसे बनज अपारी, रतनजड़ित सोपान सम्हारी। विविध रंग के कमल सुमन पर भँवर करैं गुंजार॥ निकटहिं गिरिजाजी को मन्दिर, जगमग ज्योति जगत तेहि अन्दर, लसत कँगूरा रंग रंगवर। चहुँदिशि सुमन वाटिका सुन्दर मुनिमन सुखदातार॥ "सीताशरण" बाग की शोभा, को कहि सकै निरखि सुख जो भा, सुमनकुंज लखि ममसन लोभा। कहि न सिराइ कोटिमुख सुषमा रघुनन्दन बलिहार॥

सवैया--कहुँ हेत प्रसून प्रमोद भरे, "ललिते" लतिकान के भोरन में। कहुँ कुँजन में बिसराम करैं, अवनीरुह छाहँ के छोरन में॥ वर वाटिका ठौरन ठौरन में, "रघुराज" लखें चहुँओरनमें। चितचोरन राजकिशोरनको, मन लागिरह्यो सुमन तोरन में॥ दोनों राजकुमार फूल उतार रहे हैं, इतने में--चौ०-तेहि अवसर सीता तहँ आई। गिरजा पूजन जननि पठाईं॥ संग सखीं सब सुभग सयानी। गावहिं गीत मनोहर बानी॥ कवित्त--दासी संग खासी छवि रासी चपलासी चारु, आनँद बिभासी रनिवास की निवासिनी। चन्द्र चन्द्रिकासी लसै कमला कलासी कल, कनकलतासी सबै सिय की सुपासिनी॥ भनै "रघुराज" सिय प्रेम की पियासी रहैं, सर्वदा हुलासी जे प्रकासी मन्द हासिनी। रतिसी सुरम्भासी तिलोत्तमासी मैनकासी, मायासी मवासी मंजु मिथिला मवासिनी॥ दो०-सखी सकल गावहिं, मधुर, सुन्दर चरण बनाय। वीणा वेणु मृदंग डफ, ऊँचे सुरन मिलाय॥ पद--जय जय मिथिला राजकुमारी। जय विदेह नन्दिनी अनन्दिनि, चन्द मन्द दुतिकारी॥ निमिकुलकमल दिवाकरकी दुति, रमारमन मनहारी। श्री "रघुराज" दिगन्तनलौं निज, कीरतिलता पसारी॥॥१॥ जय जय जनक-लली गुनखानी। कृपामयी मंजुल मृदुमूरति, आश्रितजन सुखदानी॥ हिमहुँ लगेजो सी सी सिसकत, निज सुनाम जपमानी। अपनावत करि दया दृष्टि तेहि सब विधि आपन मानी॥ क्षमास्वरूप परम करुणामयि, कोमलता चितसानी। जय जय सब "गुणशील" उजागरि, नागरि परम सयानी॥२॥ जय जय जनकलली सुखरासी। मिथिला नगर छीर निधि संभव, कान्तिमती कमलासी॥ स्वच्छाचार विहारिनि नागिनि उमा रमा जेहि दासी। वर्णतवेद विश्व ठकुराइनि, पूरणब्रह्म कृपासी॥ सरलस्वभाव प्रभाव विदित जग, जेहि कीरति कलिकासी। श्री "रघुराज" आजको यहिसम, विरद विशाल विकासी॥३॥ जय जय जीवनमूरि किशोरी। करुणाखानि कृपाकी मूरति, सन्तत प्रेम विभोरी॥ शम्भुप्रियागिरजा पूजनरत, भावभरी रसबोरी। सब "गुणशील"

स्वरूप क्षमामयि अनुपम रूप उजोरी ॥ ४॥ चलो चलो श्रीकिशोरी गौरी पूजन को। करि अम्ब ध्यानरत निजमनको ॥ दधि अक्षत जल पुष्प फल, धूप दीप अरु भोग। लीने साज समाज सब गौरी पूजन योग, दर्शन करि आवैं चरणन को ॥ चलो० ॥ कुन्ज पुन्ज बिच सुभगअति, मन्दिर छवि छहराय। कोटि कोटि नन्दन विपिन; शोभा पर बलि जाय, सुनि भरैं मोद अलि गुंजन को ॥चलो०॥ शम्भु प्रिया के सुभग शिर, सुमनमाल पहिराय। अस्तुति करि करजोर पुनि, मागैं शीश नवाय, "गोविन्द" लहिय भावत मनको ॥चलो०॥ ॥ ५ ॥ पूजा मिस जात प्यारी लखन फुलवारी ॥ चलिये सखी सँग सारी, पहिर नइ सारी, हाथ लै झारी, आरती थारी, पूजन जगमात, प्यारी लखन फुलवारी ॥ गावो सबै लाचारी, द्वार दै धारो, सिया हैं बारी, अतिहि सुकुमारी। कोमल हैं गात, प्यारी लखन फुलवारी ॥ गौरी बड़ी बरदानी, शम्भु की रानी, दया की खानी, देहि मन मानी। जोरौ दोउ हाथ। प्यारी लखन फुलवारी ॥ चलिके विनय बहु कीजै, चरन शिर दीजै, माँग यह लीजै, सिया वर दीजे। लागी भल घात, प्यारी लखन फुलवारी ॥६॥ भवानी मोहिं दर्शन दीजै री ॥ सिया मेरी बारी, परम सुकुमारी, चरन निज डारि लीजै री। भूपप्रण भारी, करहु रखवारी, हमारे मनवारी कीजै री ॥ भवानी० ॥ बहुत दिन ध्याई, चरण चितलाई, किशोरी पर माई रीझै री। रूप की राशी, शम्भु उरवासी, सिय निज दासी कीजै री ॥ भवानी० ॥ ७ ॥ नोट--ध्यान रहे कि ये पद मधुरलीला विभोरावस्था में ऐश्वर्य के विस्मृत समय के हैं। इनमें वर्णन विषय माधुर्य लीला रस के रसास्वादनार्थ ही है। पाठकगण ऐसा नहीं समझलें कि श्रीगिरिजाजी की कृपा के बिना श्री मैथलीजी असहाय थीं। श्री रा०च०मा० बा० कां० १४८ दो० में लिखा है। जासु अंश उपजैं गुनखानी। अगनित लच्छि उमा ब्रह्मानी ॥ भृकुटि बिलास जासु जग होई। राम बाम दिशि सीता सोई ॥ अस्तु भ्रम में न पड़िये।

पूजैं भवानी जात चलीं अलबेली अखिन सँग जानकी। मन्द मन्द पग धरति धरणि पर, षोड़षचन्द्र समानकी ॥ ऐसी छटा छबीली जग में, लखि न परै कहुँ आनकी। "मधुरअली" बेटी विदेह की, होइहैं बधू कुल भानु की ॥ ८ ॥ कुशल राखैं हमारि लाड़िली गुसइयाँ। देवि देवता पूजैं सब मिलि, जाते न कोऊ मनमाखैं ॥ जाकी कृपाकोर निशि-वासर, हम आनन्द सुधा चाखैं। "मधुरअली" जुग जुग जियो स्वामिनि, सिय जू की जय जय भाखैं ॥ ९ ॥ इस प्रकार सुधा विनिन्दिक स्वरों में मंगलमय मंजुल गीतों को गाती हुई सखियाँ श्रीकिशोरी जू को बाग में सरोवर के तटपर लाईं ॥ चौ० मज्जनकरि सर सखिन समेता। गई मुदित मन गौरि निकेता ॥ पूजा कीन्ह अधिक अनुरागा। निज अनुरूप सुभग वर माँगा। एक सखी सिय संग बिहाई। गई रही देखन फुलवाई ॥ तेहि दोउ बन्धु बिलोके जाई ॥ दो०-नृप किशोर तोरत सुमन, आपस में बतराय। तेहि क्षण सिय की एक सखि, गई सामने आय ॥ नखसिख श्याम स्वरूप लखि मन्द मन्द मुसुकान। मृदुबानी सुनि चपल चख, देखत भूली भान ॥ लौटि चली सिय ओर पुनि,

तनको नहीं सम्हार। कम्पत अँग पुलकावली, बहत दृगन जलधार ॥ इत उत पग डगमग परत, लेवन ऊर्ध उसास। गिरत परत केहु भाँतिसो, आई सखियन पास ॥ प्रेम बिवस सीता पहिं आई ॥ दो०--तासु दशा देखी सखिन, पुलगात जल नैन। कहु कारन निज हरषकर, पूछहिं सब मृदुबैन ॥ उस प्रेम दिवानी सखी से अन्य सखियों ने पूछा–पद-- कैसी हो गई दशातोर, हमसे कहति किन बाला। तुमतो हमरे सँग आई, गई थी फुलवाई, लख्यो का जाई। अँखियाँ रसबोर ॥ हमसे० ॥ यातो अमल कछु खाई, गई बौराई, दृगन अरुणाई। कौन मारे दृगनकोर ॥ हमसे० ॥ मुखसे वचन ना उचारे, दृगन जलढारे, बसन न सम्हारे। भइ काहे विभोर ॥ हमसे० ॥ कोई सखी दुलराई, हृदय से लगाई सनेह समाई। पोंछत दृगकोर ॥हमसे०॥ दूसरी सखी बोली-सवैया-- ऐरी सखी तोहि काह भयो, पूछेउ पर नाहिन उतर देती। आनँद भीजी सनेह सों सीजी, चितै कहुँ पाछे उसा-सन लेती ॥ काह चखो अरु काह लखी, सखि वेगि बताव दुराव न हेती। "श्रीरघुराज" कहें कहँ रीझी, भई तन लीझी अजौं दशा ऐती ॥ ऐसा कहने पर भी जब वह सखी न बोली, तब अन्य सखियों ने कहा-कवित्त ठाढ़ी तू जकीसी त्यों थकीसी मुख मीसी मन्द, खोसी त्यों अनन्द कीसी बैकलसी दीसी है। पीसी है मनोजकीसी छुटिगै छतीसी छटी, सुरति उड़ीसी भरी भागकी नदीसी है ॥ घाव की लगीसी बिसे वीसौं त्यों घसीटी प्रीति, त्यागे कुलकानिहीसी औचक उचीसी है। "रघुराज" नेह नीति रुचिर रचीसी पची, तची बिरहानल सों ऊधम मचीसी है ॥ दो०-सब सखियन के बैन सुनि, मन में धीरज धार। हिय में श्यामकिशोर लखि, रसमय गिरा उचार ॥ सखी कहती है--सवैया-बाग में आज सुनो सजनो, दुइ राजकिशोर अनूप सिधाये। बिन मोल ही लेत खरीद हियो, अँग अंग महा छवि धाम सोहाये ॥ सुठि दोना लसैं, कर कंजन में, अवलोकि अनेकन काम लजाये। "गुनशीला" उतै न चलो सखियों, बिकिहौ बिनमोल बचौ न बचाये ॥ पद—बाग में आये राजकिशोर। कल जिनने मिथिलावासिन के, लीने हैं चितचोर ॥ अँग अँग लाजत बहु रतिपति, निरखि बिकेउ मनमोर। 'गुनशीला' न जाउ वा मारग, नहिं चलिहैं कछु जोर ॥ कवित्त—पूछति कहाहै उतै कौतुक महाहै नहिं जातसो कहा है अब जौन लखि पाई री। बिधिके सँवारे राजकुँवर पधारे प्यारे, विश्व मनहारे धारे विश्व सुन्दराई री ॥ साँवरो सलोनो दूजो दुति को दिमाग वारो दृग ते टरै न टारो मति अकुलाई री। कहे ना सिराई 'रघुराज' बिनदेखे बनिआई, आज लौं न देखी जौन आज देखिआई री ॥ नीलमणि मंजुताई नीरदकी श्यामताई, अलसी कुसुम कोमलाई हठि आई है। केशर सुगन्धताई बिज्जु दीपताई सोन, जूही नहिं पाई पटपीत पियराई है ॥ भौंहन कमान कसि प्रीति खरसान चोखे, नैनबाण मारे फूटि गाँसी अटकाई है। 'रघुराज' कैसो राजकुँवर अनोखो अरी हौंतौ इतै घायल ह्वै घूमिघूमि आई है ॥ पद-सखीरी जो जैहैं वहि ओर। कहौं बनाय बनाय कछूनहि राजकुँवर चितचोर ॥ जो न मानि हैं सीख

सीख सयानी, पुनि न चली कछुजोर। 'श्रीरघुराज' हाल होइ सोई, जौन भयो अब मोर ॥ ६ ॥ लखे हौं जबते राजकुमार। तबते इन अँखियन अस दीसत, श्याम भयो संसार॥ कहौ तबहिंलौं हमहिं बावरी, मानहुँ मोहिं गँवार। 'श्रीरघुराज' लखी जबलौं नहिं वह मूरति मनहार॥ सवैया--जानि परैगो तबै तुमको, जबै बावरी आपहू मेरीसी होइहौ। भूलिहै खान औ पान सभी, हँसती हो हमै कलि आपहु रोइहौ॥ वे बरजोर करैं अपने वश, लाज औ कानि सबै कुल खोइहौ। साँवरीमूरति देखतही सखि साँची कहौं सबै बावरी होइहौ ॥

उस सखी की ऐसी बातें सुनकर एक सखी ने गिरिजाजी के मन्दिर में जाकर श्रीकिशोरीजी से कहाकि, हे लाड़िली जू! एक सखी बाग में कुछ कौतुक देख आई है, गिरिजाजी का पूजन तो हो गया है, आप बाहर आकर देखिये। सखी की बात सुनकर श्रीकिशोरीजू ने मन्दिर से बाहर आकर उस सखी की दशा देखकर प्रेमपूर्वक पूछा, बहिनजी किस कौतुक को देखकर तुम्हारी ऐसी दशा हो गई है। तब वह बावरी सखीने कहा--दो० घनोकुँज लोनीलता, फूलेफूल अपार। लखे कुसुमतोरत तहाँ, सुन्दर युगल कुमार॥ सवैया--साँवरो सुन्दर एक मनोहर, दूसरो गौर किशोर सुखारी। का कहिये मिथिलेशललो, वह मूरति पै मन है बलिहारी॥ 'श्रीरघुराज' बनै नहिं भाषत, राखत हौ में बनै छबि प्यारी। नैन बिना रसना रसना बिन, नैन कहो किमि जाय उचारी॥ पद--मृदुबयस सोहाई, तन श्याम गौरताई, नख सिख छबि छाई अति लोने। द्वैकुँवर लखे सखि बाग सुघर असभये न हैं नहिं होने॥ बिधु शरद जुन्हाई, मुख अमित सोहाई, राजीव नयन रतनारे। कुँचितकच करुणकपोल, लसतजनु कंजभ्रमर मतवारे॥ दोउ नवलकिशोरा, चितवन चितचोरा, सर्वस मनमोरा हरआली। मुखमुसुकनि जादू भरे रसीले चाल चलत मतवाली॥ इक श्यामसलोना, लीने कंज कर दोना, लघुहंस कोसो छौना अति प्यारो। सखि प्रविश्यो हियकेबीच, खींचमन टरत न उरसे टारो॥ शशिमुख सुघराई, लखि सुधि बिसराई, उर अति घबराई चितहारी। 'गोविन्द' न पलछिन चैन सखी री वाछबिपै बलिहारी॥

वार्ता--उस सखी की बातें सुनकर श्रीविमलाजी ने कहा कि- हे लाड़िली जू! सवैया--मैं सुना आज महीपति मन्दिर, कौशिक संग महासुकुमारे। राजकुमार उभै कोउ आये, निजै छबि मारहुँको मदमारे॥ कालि निहारिगये नगरी, नरनारि लखे निज तेड़ उचारे। 'श्रीरघुराज' स्वरूपकी माधुरी,आजलौं ऐसी न नैन निहारे॥ जे उनको चितये भरि नैनन, धोखहु वे जेहि ओर निहारे। ते बिगरे बिगरे निज बानि, द्रुतैतिनपे तनहूँ मन-वारे। 'श्रीरघुराज' सबै नरनारिन, कीने वशैनिज राजकुमारे। या मिथिलापुर में बिचरे, निजरूपकी मोहनी कापै न डारे॥ दो०--ह्वैहैं तेई अवशि ये, और न दूसर होय। राम लखन असनाम जिन, कहत सखी सब कोय॥ चौ०-तासु बचन अति सियहिं सोहाने।

दरस लागि लोचन अकुलाने ॥ चलीं अग्र करि प्रिय सखि सोई । प्रीति पुरातन लखै न कोई ॥ दो० सुमिर सीय नारद वचन, उपजी प्रीति पुनीत । चकित बिलोकति सकलदिसि, जनु ससि मृगी सभीत ॥ चौ०-कंकन किंकिन नूपुर धुनि सुनि । कहत लखन सन राम हृदय गुनि ॥ मानहुँ मदन दुन्दुभी दीनी । मनसा बिश्व विजय कहँ कीनी ॥ सवैया-और किये तनको मनको रह, मोपै चूप चढ़ि सासन लागी । लै ऋतुराज समाज सबै सँग, कोकिलकीर व गाजन लागी ॥ दूरिकै धीर समीर लगे 'ललिते' लतिकावर राजन लागी । जीतने को जग साजन साज, मनोज की दुंन्दुभि बाजन लागी ॥ चौ०-अस कहि फिरि चितये तेहि ओरा । सिय मुखससि भये नैन चकोरा ॥ भये विलोचन चारु अचंचल । मनहुँ सकुचि निमितजे दिगंचल ॥ देखि सीय शोभा सुखपावा । हृदय सराहत वचन न आवा ॥ दो०-श्रीजानकी स्वरूप लखि, नख शिख सुषमागार । निज सौन्दर्य गुमान तजि, रघुनन्दन बलिहार ॥ करत प्रशंशा मनहिंमन, बढ़ेउ परम उद्‌दार । प्रगट रूप वर्णन लगे, पावत मोद अपार ॥ सवैया--आनन इन्दुअनेकनकी छवि छीनि लई सुषमा बरजोरैं । देवन की नरदेवनकी, सियको मुखदेखि त्रियाँ तृण तोरैं ॥ दीठिसों मैली न होय कहूँ, सकुचाय बधू सिगरी द्रग मोरैं । प्रेम सखी चखचोरैं करैं पलकैं झुकि आनन्द मानि निहोरैं ॥ दन्तनकी अवली सियकी वर कुन्दकी पाँखुरी के अनुहार हैं । कोरैं कहूँ मुसुक्यात कहैं मनि, हीरनके दविजात गुमान हैं । चीकने चौगुने सौगुने श्वेत, विलोकि थके बुधसे बलवान हैं ॥ 'प्रेमसखी' केहि भाँति कहैं, मतिमन्द महा सबभाँति अदान हैं ॥

कवित्त--जगत निकाई शुक नाशिका निकाई लिये, नाशिका निकाई पै सिमिटि सब आई है । मुक्ताकलित सोहैं ललित ललाम यामैं, लटकत लटकि अधरन छविछाई है ॥ हँसनि हिये में बाँकी बैठि गई प्रेमसखी, रतन अनेकहूँ से कढ़व कठिनाई है । कैसे कोउगावै बुधि बानीमें न आवै छवि, देखे बनिआवै जिनपाई तिनपाई है ॥ नैन अनियारे तारे पुण्डरीकबान सारे, सीय पुतरीनपै चीरेक महाकारे हैं । कछुक जरारे शीलसागर सुधारे प्यारे, बारुनी बिशालधारे-जोर दोर बारे हैं ॥ दीनपै सनेह धारे मेरे प्राणवारे होत,उपमा न पावत विरंचि रचिहारे हैं । मीन द्रग खंजन बनाये विधि प्रेमसखी वारि बन व्योम बसैं लज्जित बिचारे हैं ॥ कमल कपोल गोल सुषमा बखानै कौन, देखे बनिआवत तरौनन समेत हैं । ढके नीलसारीसो किनारी जरतारी कोर, अलकैं वलित जो अमित छबि देत हैं ॥ तरनि तनूजा विधि ख्याल लघु लागै मोहिं, उपमा न दीनी प्रेम सखी यहि हेत है । वेइ बड़भागी जिनहिं सिरछवि सुनीको लगी, परम अभागी जो अनत चितरेत हैं ॥ मेचक सघन सुकुमार हैं सेवारहू से,सीयजू के शीश में विराजत विशालबार । मोरपंख वारे तनधारे मरकत न सम, पन्नगकुमार रचे कोटि कोटि कर्तार ॥ उपमाके हेत प्रेमसखी बुधिवान सब, करत रहत नित नये नये उपचार । मोर पक्ष डारैं त्वचन पन्नग नवीन धारैं, मनमें न आवैं तो बनावैं विधि बारबार ॥ ऐसा कहकर आश्चर्य चकित होते

हुये बोले। दो०-अरे भयो का मोहिं यह, रहो न देह सँभार। औरै तनमन ह्वै गयो, काह करै कर्तार॥ पुनः लक्ष्मणजी को संकेत से बताया। चौ०--तात जनकतनया यह सोई। धनुषयज्ञ जेहि कारन होई॥ पूजन गौरि सखी लै आई। करत प्रकाश फिरत फुलवाई॥ जासु विलोकि अलौकिक शोभा। सहज पुनीत मोर मन छोभा॥ सो सब कारन जान विधाता। फरकहिं सुभग अंग सुनु भ्राता॥ रघुवंशिन कर सहज सुभाऊ। मनकुपंथ पग धरत न काऊ॥ मोहिं अतिसय प्रतीति मनकेरी। जेहिं सपनेहुँ पर नारि न हेरी॥ जिनके लहैं न रिपुरनपीठी। नहि पावैं परतिय मन डीठी॥ मंगन लहैं न जिनके नाहीं। ते नर वर थोरे जगमाहीं॥

पद--बशी हिय नवल सिया सुकुमारी। गजकी चलनि तकनि मुख बिहँसनि, सुषमानिधि पर वारी। अलिगन मध्य महाछवि सरसत, कोटिचन्द्र उजियारी। "मधुर अली" करि प्रीति लखनसों, बचन कहत धनुधारी॥ श्रीरामजी इस प्रकार लक्ष्मणजी से कह रहे थे; उधर सामने से आती हुई श्रीकिशोरी जू—चौ०-चितवत चकित चहूँदिशि सीता। कहँ गये नृपकिशोर मन चीता॥ लताओट तब सखिन लखाये। श्यामल गौर किशोर सोहाये॥ सखीने कुँजकी ओर अँगुली उठाकर श्रीकिशोरी जू से कहा--सवैया-प्यारी लखो सुषमा सरसात, चहूँदिशिते अलि गूँज मचाये। फूले सवै तरु मोद भरे, चहुँओर झुके मनो जाल बनाये॥ दोनेलिये कर दोनों कुमार, लखातलली मनलेत लुभाये। लोनी लतान हैं मेघसमान गुमानभरी जनु भानु लुकाये॥ कवित्त-लाल लाल डोरे कल कंजदल दुतितोरलेत, जगचितचोरे मानो मैनहीके ऐन हैं। मीन छविछीन मृगशावक अधीन, खंजरीट बलहीन लखिहोत अतिचैन हैं। चकितचकोर मन भूमिनके भार भौंर, श्याम रंग हीसों यों "विहारी" सुख सैनहैं। काट दुख द्वन्द फन्द आनँदकेकन्द, बृन्द रसके प्रबन्ध रामचन्द्रजी के नैन हैं॥ रंगभरे रसभरे छबिछहरेसे चारुकमल परेसे भरे ललित ललाम के। चीकने चपल कचचौंध चपला से चमक चुभेचित्त चाहि चटकीले चैन काम के॥ लेत मन मोल सो अतोल निज भक्तन के बरनै "विहारी" धारी प्रभा अधिराम के। कुण्डल की डोलनि कपोलन अमोल लोल गोलगोल कोमल कपोल श्याम राम के॥ सखी के बचन सुनकर श्रीजानकीजी ने सामने लता कुँज की ओर देखा तो, चौ०-देखि रूप लोचन ललचाने। हरषे जनु निज निधि पहिचाने॥ थके नयन रघुपति छवि देखे। पलकनहू परिहरी निमेखे॥ लोचन मग रामहि उर आनी। दीने पलक कपाट सयानी॥ श्रीकिशोरीजू को ध्यानावस्थित देखकर सभी सखी सोच रही हैं कि माताजी के निकट जाने में बिलम्ब हो रहा है। तथापि संकोच वश कोई भी कुछ कह नहीं पाती हैं। अधिक विलम्ब होते हुये जानकर--चौ०-धरि धीरज एक अली सयानी। सीता सन बोली मृदुबानी॥ सखीने कहा, हे श्रीकिशोरीजू! आप श्रीगिरजाजीका ध्यान बादमें कर लीजियेगा, इस समय तो आँख खोलकर राजकुमारों की शोभा देख लीजिये।

कवित्त—पीत बस्त्र धारे कर दोने गोरे साँवरे सलोने लाल, हंसनके छौने जिन चाल पै थाके हैं ॥ कीटमणि ताके नहिं काके मन मोहि जात, केशर तिलक भाल राजैं अति बाँके हैं। निकसे लता कुँज से कुमार दोउ निहारि लेहु पाछेंफिर लली ध्यान धारो गिरिजाके हैं ॥ सखी की बात सुनकर- चौ०-सकुचि सीय तब नैन उघारे। सनमुख दोउ रघुसिंह निहारे॥ नखसिख देख रामकी शोभा। सुमिरि पितापन मन अतिछोभा॥ सखियों ने श्रीकिशोरीजी की प्रेमपरतन्त्र परिस्थिति देखी, तो परस्पर में सब कहने लगीं कि—आज हम लोगोंको बागमें बहुत विलम्बहो गयाहै,अब शीघ्र चलना चाहिये। पश्चात् कोई सखी श्रीमैथिलीजू का हाथ पकड़कर संकेत से निवेदन पूर्वक बोलीं—दो० चलहु भवन अब लाड़िली,आज भई अति देर। बाग लखन हित कालि पुनि, आवैंगो यहि बेर॥ पद—यहि बेरिया सवेरे बहुरि अइबै। पूजन हेत पुरारि प्रिया के, अम्मा से आयसु लइबै॥ बेगि चलिय अब देर करिय जनि, माता बूझब का कहिबै। भोर आइ पुनि पूजि भवानी, "मधुरअली" हम बलि जइबै॥ चौ०-गूढ़ गिरा सुनि सिय सकुचानी। भयेउ बिलम्ब मातु भय मानी॥ धरि बड़ि धीर राम उर आने। फिरीं अपनपौ पितुवश जानी॥ दो०-देखन मिस मृग बिहँग तरु, फिरइ बहोरि बहोरि। निरखि निरखि रघुवीर छवि, बाढ़इ प्रीति न थोर॥ पद—आली लखो बनमाली सलोना। जालिम जुलुफ़ विपुल व्याली सम, मोहिं डसी किमि आऊँ री भौना॥ हरिलीनो हिय राजकुँवर यह, मंजुल हँसनि कुसुम करदोना। ठाढ़ो लताभवन के द्वारे, जिमि कन्दर काढ़ि केहरि छौना॥ नैन सैन हनि हरयो चैन सब, मैन हैं न सम कोउ अरुझोना। लागी लगन साँवरीसूरति, शपथमोरि अब कोउ बरजोना॥ 'श्रीरघुराज' राजढोटा पर, तनमनवारि भई सब मौना॥ लोकलाज कुलकानि बिसरिगो, आजुइ होनी होइ सो होना॥ दो०-जनकलली अनिमिष चितै, श्यामल राजकुमार। धरेउ ध्यान मीलित दृगनि, ठाढ़ो गहि तरुडार॥ प्रेमविवश भइ जानकी, मधुरअली जियजानि। पकरि पाणिपंकज विहँसि, बोली मंजुल बानि॥ सवैया—देरभई गहिशाखतमालकी, ठाठीअहै पगपीर न जोवै। ध्यान धरै गिरिजा बपुको मिथिलेशलली क्यों समय यों खोवै॥ पूजन कीजै बहोरि उतै चलि, मागिये जो मनमें कछु होवै। देखिले साँवरो राजकुमार, खरो 'रघुराज' महामुद मोवै॥ दो० सखी वचन सुनि सकुचि सिय पुनि दृग पलक उघारि। सन्मुख ठाढ़े कुँवर लखि,गई मनहिं बलिहारि॥ सवैया—नखतेंसिखलों लखि राजकिशोर, सिया चखमें न परैं पलकैं। मिलिहैं मोहिनाथ विशेषहुतै, हठिहोत विश्वास हिये भलकैं॥ 'रघुराज' न लाज तजे बनतो, नहिं जात बनै शरणी कलकैं। छविकी छलकैं अलकैं झलकैं, लखिकै हिय में हलकैं ललकैं॥ पितुके प्रण की सुधिकै पुनि सो, पछितातिं मनहि नहि धीर धरै। हरकोधनुहै अतिही कठिनै. महिपालन को नहिं टारो टरै॥ 'रघुराज' महासुकुमार कुमार, कहो किमि टोरिहैं मंजुकरै। विधिकैंधौकरौं इनहोके गरे, ममहाथनसों जयमालपरै॥ चापमहेशको होय हरू, अवधेश

को लाड़िलो पाणिसों टोरै । वादिन देवदिखाउ हमैं; जयमाल धरौं इनके गलठौरै ॥ 'श्रीरघुराज" सदा निरखौं, हरषौं यहि औसर जो चितचोरै । साँवरो होय हमारो पिया, अरु देवर होय ललालघु गोरै ॥ देखै बहोरि बहोरि कुरंगन, त्यों ही विहंगन भृंगन सीता । तामिसि राजकुमार विलोकति, होत अघाउ न चित्त पुनीता ॥ लालच लागो विलोकनकी इत, त्यों उत है जननीते सभीता । खेलत चित्त से चंगचली ज्यों, बँधी रघुराज के प्रेम पुनीता ॥ दूर सिधारत जानिके जानकी, पाटी तहाँ अपनौ मन कीनी । प्रेमतरंगन रंग अनेकन, त्यों मति की लिखनी कर दीनी । नेहकी स्याही जलै अनुराग को, श्री 'रघुराज' पिया निज चीन्ही । श्रीरघुवीरकी यों तसवीर, वनाइसिया हिय में धरि लीनी ॥ जिस प्रकार श्रीमैथिलीजू ने श्रीरामजीकी तसवीर अपने हृदय में बनाली, उसीप्रकार--दो०—जात जान श्रीमैथिली, रघुनन्दन हर्षाय सियकी मंजुल मूर्तिवर, निजहिय लीन बनाय ॥ तब श्री-किशोरीजू-- चौ०-गई भवानीभवन बहोरी । वन्दि चरन बोलीं करजोरी । जय जय गिरिवर राजकिशोरी । जय महेश मुखचन्द्र चकोरी ॥ छन्द चौबोला— जय शंकरप्यारी शैलकुमारी, जय गणपतिकी माता । सेवक दुखहरनी वेदन बरनी, कीरत जग विख्याता ॥ शारदशत आवैं शेषगनावैं, तौ यश नहि कहिजाता । जय दुःख निवारन खल संहारन, है चारों फलदाता ॥ ध्यावत चित लाई जो तोहि माई, चरणन शीशनवाई । पद पद्म-परागा करि अनुरागा, मनभावन वर पाई ॥ मेरे चित जोहै तोहि विदितहै, नहि दुराव कछुमाई । तासे हिय राखौं नहिं मुख भाखौं, कीजै वेगि सहाई ॥

कवित्त--भव भव विभव पराभव की खानि जैति, जैति सबरानी वेदवानी करजानी है । गावै मनबानी ताहि देत मन मानो जौन, जैति सुखदानी दास हाथन विकानी है ॥ दानीकौन दूसरो जो रावरीबराबरीको, छाइरही तीनलोक कीरति कहानी है । जैसे चहै पोसो मोहिं दोषो निर्दोषोपै, मोको तो भरोसो एक तेरो भवानी है ॥ दास ना निराश करै कबहूँ आवास आये, जरति जगति सब जग पोषन भरया है । देव औ अदेवमाहिं देव नरदेव जेते, पाये मोद भूरि पदसेवन करइया है ॥ "ललित" न दूजी आश मोहि गिरिराज सुता तोहि तजि और कौन औढर ढरइया है । मेरी मनकामना की पूरन करइया हिय, आनँद भरइया मइया तूही कामगइया है ॥ करुणा को कन्द भव फन्द हरनहार, मुखचन्द चाहि तन तपन बुझइया हो । श्यामरो सलोनो सुषमासों सनो शील, निधी ऐसो सिद्धी लैइके अति हिय हर्षइया हो ॥ सोचन सकोचन को मोचन कर सीय हीय, रोचन सो जगपाई कीरति बढ़इया हो । सुखद सोहाई हो सुमन यशछाई हो, हमरो बरदान मन भावत वरवैया हो ॥ श्रीमैथिलीजू की इसप्रकार भावभरी प्रेमयुक्त प्रार्थना सुनकर, अपनेको बड़भागी समझकर श्रीगिरिजाजी बोलीं-- चौ० सुनुसिय सत्य सत्य असीष हमारी । पूजहिं मन कामना तुम्हारी ॥ नारद बचन सदा सुचि साँचा । सो बरु मिलिजाहिं मनराँचा ॥ दो०-श्रीनारदजी ने कहा, सत्य जानिये सोइ । श्याम

सलोनो शीलनिधि, सो तुमरो पति होय ॥ करुणा कृपा निधान जो, सबविधि परम सुजान। सोई हों तुव प्राणधन, यह हमरो वरदान ॥ जावहु सुखसों भवन अब, भ्रम सन्देह मिटाय। जामे तुमरो मन रमेउ सोइ निज प्रीतम पाय ॥ रहियो सदा प्रसन्न मन, आनँद सिन्धु समाय। श्रीमिथिला अरु अवधमें, परमानँद बरसाय ॥ चौ०-अस कहि निजगर माल गिराई। सीय मुदितमन शीश चढ़ाई। पुनि पुनि गिरजहिं शीश झुकाई। चलीं मैथिली हिय हरषाई ॥ हृदय सराहत सीय लोनाई। गुरु समीप गवने दोउ भाई ॥ दो०-सादर चरणन शीशधरि, रघुवर कियो प्रणाम। पुनि प्रसून दोना दियो मनमोहन सुखधाम हियमें सियमूरति बशी, निरखि निरखि हुलसात। प्रेमचिन्ह तन में प्रगट, लखि पूछत मुनि बात ॥

कवित्त--कम्पतनहोत स्वेदबुन्द तनरूह ठाढ़े, बोलत न बैन पुत्र काह करि आये हो। और सो बरननैननीर ऐसे नेह भरे,साँची हो बताओ कौन फन्द फँस आयेहो ॥ 'ललिते' सु ऐसे हंस वंश अवतंश तुम, ऐसी रीति गहि पंथ कैसे परिआये हो। कैसे हो बताओ लाल हाल अवलोको नेक, सुमन लै आये मन कहाँ धरि आये हो ॥ दो०-सुनि मुनिवर के बचन अस, रघुनन्दन सकुचाय। हाथ जोरि बोले बचन, अतिसय सरल सुभाय ॥ सवैया--मैं प्रभु आयसु को धरि शीश गयो हितकै जबहीं फुलवारी। तोरतै फूल तहाँ ये दशा भई, ऐसी न जानि है देह सँभारी ॥ का कहिये प्रभुसों "ललिते" यह जैसी भई नई रीति हमारी। नेह भरी ठगिया में गयो, बगिया में लखी मिथिलेशदुलारी ॥ फूलनकाज गयो उतआज, जहाँनिमिराजकी है फुलवाई। "वन्दि" सहेलिन संगलिये, चलिआई तहाँ मिथिलेश की जाई ॥ दीठि दिखाइ परी जबते, तबते तनमें पुलकाई सी छाई। भाइ छली मनमें पुलकाइ, लगाइ गई यहमो कुलकाई ॥ दो०--जनकसुता की सुछवि लखि, ममसन भयो विभोर। तबते ऐसो गति भई, सत्य कहौं करजोर ॥ चौ०--राम कहा सब कौशिक पाहीं। सरल सुभाव छुआ छल नाहीं ॥ सुमन पाय मुनि पूजा कीनी। पुनि अशीष दोउ भाइन दीनी ॥ सुफल मनोरथ होहि तुम्हारे। रामलखन सुनि भये सुखारे ॥ श्री-विश्वामित्रजी ने कहा--दो० तुमरे मनमें जो वशी, मूरति सुषमागार। शिवप्रसाद सो पाइहो, आशिर्वाद हमार ॥ चौ०-विगत दिवस मुनि आयसु पाई। सन्ध्या करन चले दोउ भाई ॥ प्राचीदिशि शशि उयउ सोहावा। सियमुख सरिस देखि सुखपावा ॥

श्रीरामजी मन में सोचने लगे-सवैया--चन्दनहीं विषकन्द है केशव, राहु यहै गुनि लीलि न लीनो। कुम्भज पावक जानि अपावन, धोखे पियो पचि जान न दीनो ॥ याको सुधाधर शेष विषाधर, नामधरो विधि है मतिहीनो। सूर सो भाई कहा कहिये, यह पाप लै आप बराबर कीनो ॥ लक्ष्मणजी ने कहा-- दो०-दिन दिन छीजत दीनअति, होत दिवस द्युतिमन्द। कैसे प्रभु करि सकै यह, सियमुख समताचन्द ॥ कवित्त -आनँद को कन्द मैथिलीने पायो मुखचन्द, लीला ही सों रावरे के मानस को चोरे हैं। वैसोही

विरंचि दूजो रचिबेको चाहत अजहूँ,शशिको बनावै नेक मनको न भोरेहैं ॥ फेरत हैं सान आसमान पर चढ़ायफेरि,पानिप बढ़ाइबेको बारिधि में बोरेहैं। जानकी के आनन समान ना विलोकैं विधि, टूक टूक तोरे फिर टूक टूक जोरे हैं ॥ अस्तु यह चन्द्रमा किसी प्रकार भी श्रीजानकीजी के मुख की समानता नहीं कर सकता है ॥ तब श्रीरामजी ने कहा-सवैया-चन्द मलीन है कौन कुलीन, जो लेन चहै सिय की समताको । राहु अधीन नितै नित छीन लखे विरहीन बढ़ै दुख ताको । सिन्धु ने दीन निकारि विषय सँग कीन बराबरि सिन्धु सुताको । है सकलंक कलंक लगै वहि देइ सियामुख जो उपमाको। चौ०-सिय मुखछबि विधु व्याज बखानो । गुरुपहिं चले निसा बड़ि जानी ॥ करि मुनिचरन सरोज प्रनामा । आयसु पाय कीन विश्रामा ॥ विगत निसा रघुनायक जागे । बन्धु विलोकि कहन अस लागे ॥ उयेउ अरुन अवलोकहु ताता । पंकज कोक लोक सुखदाता ॥ तब लक्ष्मणजी ने कहा--दो०-अरुणोदय सकुचे कुमुद उडगन ज्योति मलीन । तिमि तुमार आगमन सुनि, भये नृपति बलहीन ॥ क्योंकि सभी राजा तारागणों के समान टिमटिमाते हैं, वह शिव धनुष रूपी घोर अंधकार को दूर नहीं कर सकते हैं। अस्तु सूर्य ने अपने उदय होने के बहाने से आपका प्रताप सभी राजाओं को दिखाया है । और धनुष तोड़ने की तो आपके भुजाओं की परिपाटी उदयाचल की घाटी हैं। इस प्रकार वार्ता करके दोनों भाइयों ने स्नानादिक क्रिया करके मुनिको प्रणाम किया। उसी समय श्रीविदेहजी के भेजे हुये श्री-सतानन्दजी पधारे । और श्रीजनकजी की प्रार्थना सुनाये कि आप मुनि मंडली तथा दोनों राजकुमारों के साथ धनुषयज्ञ में पधारिये। विश्वामित्रजी ने कहा-- चौ०-सीय स्वंयर देखिअ जाई । ईश काहि धौं देइ बड़ाई ॥ तब लक्ष्मणजी ने कहा—हे नाथ जिस पर आपकी कृपा होगी, वही यश का पात्र बनेगा।

* धनुषयज्ञ *

चौ० -पुनि मुनि बृन्द समेत कृपाला । देखन चले धनुष मखसाला ॥ रंगभूमि आये दोउ भाई । अस सुधि सब पुरबासिन पाई ॥ चले सकल गृह काज बिसारी । बाल जवान जरठ नरनारी ॥ श्रीजनकजी ने देखा कि बहुत बड़ी भीर हो गई है । तब अपने व्यवस्थापक सेवकों को आज्ञा दी कि शीघ्र ही सभी को यथोचित आसन पर बिठा दीजिये । दो०--कहि मृदु बचन विनीत तिन, बैठारे नर नारि । उत्तम मध्यम नीच लघु, निज निज थल अनुहारि ॥ चौ०--राजकुँवर तेहि अवसर आये । मनहुँ मनोहरता तन छाये ॥ जिनके रही भावना जैसी । प्रभुमूरति तिन देखी तैसी ॥ दो०-- सब मंचन ते मंच एक, सुन्दर विसद विशाल । मुनि समेत दोउ बन्धु तहँ बैठारे महिपाल ॥ चौ०-प्रभुहिं देखि सब नृप हिय हारे । जनु राकेश उदय भय तारे ॥ अस प्रतीति सबके मन माहीं । राम चाप तोरब सक नाहीं ॥ बिन भंजेउ भव धनुष बिशाला । मेलिहि सीय राम उर माला ॥ अस विचारि गवनहु घर भाई । जस प्रताप बल तेज गँवाई ॥ यह

सुनकर अन्य राजाओं ने कहा-चौ०-तोरेहुँ धनुष ब्याह अवगाहा। बिन तोरे को कुँवरि बिवाहा॥ इन दुधमुँहे बच्चों की बात क्या चौ०-एक बार कालहु किन होऊ। सिय हित समर जितब हम सोऊ॥ ऐसा सुनकर धर्मात्मा राजाओं ने कहा कि—सो०-सीय बिआहबि राम, गरब दूर करि नृपन के। जीति को सक संग्राम, दशरथ के रन बाँकुरे॥ चौ०-व्यर्थ मरहु जनि गाल बजाई। मन मोदकनि की भूख बुताई॥ सिख हमारि सुनि परम पुनीता। जगदम्बा जानहुँ जिय सीता॥ जगतपिता रघुवरहिं बिचारी। भरि लोचन छबि लेहु निहारी॥ दो०-जानि सुअवसर सीय तब, पठईं जनक बुलाई। चतुर सखीं सुन्दर सकल, सादर चलीं लिवाइ॥ चौ०—चलीं संग लै सखी सयानी। गावत गीत मनोहर बानी॥ पद – सीतागवन उत कीजै—गवन उत कीजै, जहँ धनुमख साल। सीतागवन उत कीजै॥ सकुची घुँघट पट डालो, घुँघट पट डालो, बिलसत जयमाल॥ सीता०॥ बैठे विपुल गुरुजन हैं विपुल गुरुजन हैं। बड़े बड़े महिपाल॥ सीता०॥ गिरिजा चरण बसुनायक चरण बसुनायक। सुमिरहु यहि काल॥ सीता०॥ धीरे धीरे चलो सुकुमारि कुमारि सिया प्यारी। देश देशके भूपति आये, करकरके अपना सिंगार॥ तुम्हरो रूप शेषहू न बरनै, जाके हैं जिह्वा हजार॥ ऊँचे सिंहासन मुनि सँग बिराजे, जाकी है शोभा अपार॥ इस प्रकार मंगलगीत गाती हुईं सखियाँ श्रीमैथिलीजू को धनुष के निकट ले गईं, पुनः गाने लगीं--पद--करलो सब ध्यान पूजा शिवा की प्यारी। गौरी गजानन माता, सबहिं सुखदाता, सुमिरो धरिध्यान, पूजा शिवा की प्यारी। लिखा कर्म विधि दीन्हा, अचल करि दीन्हा, मिटै नहिं चीन्हा। रखिहैं विधि आन॥ पूजा०॥ "मधुरअली" सखि न्यारी, रामछवि प्यारी, सिया सुकुमारी। वर मिलैं भगवान॥पूजा० पिता प्रण कठिन सुनायो भूप सब आयो बैठि सिरनायो, नहिं उठत पिनाक॥ पूजा०॥ धनुष का पूजन करवाकर श्रीकिशोरी जू को सखियों ने माताजी के निकट ले जाकर विठाया। चौ०-तब बन्दीजन जनक बोलाये। बिरदावली कहत चलि आये॥ कह नृप जाइ कहहु पन मोरा। चले भाट हिय हरष न थोरा॥ बन्दीजनों ने कहा कि सभी राजा महाराजा ध्यानदेकर सुनिये, हम श्रीजनकजी की प्रतिज्ञा को हाथ उठाकर कहते हैं—भगवान शंकरजी के धनुष की कठोरता और गरुता सभीको विदित ही है कि जो राजाओं के भुजबल रूपी चन्द्रमा को ग्रास करने के लिये राहू के समान है। रावण बाणासुर इत्यादि बड़े बड़े वीर भट जिसे देखकर उसे बिना उठाये ही चुपके से चले गये। श्रीशंकर जी के उसी धनुष को राजसमाज में जो कोई वीर तोड़ देगा, तो वह तीनों लोकों की जय समेत श्रीजानकीजी को प्राप्त करेगा। चौ०--सुनिपन सकल भूप अभिलाषे। भटमानी अतिसय मन माखे॥ परिकर बाँधि उठे अकुलाई। चले इष्टदेवन सिर नाई॥ तमकि ताकि तकि शिवधनु धरहीं। उठै न कोटि भाँति बल करहीं॥ जिन राजाओं के मनमें सद्विचार था, वह धनुष के समीप नहीं गये। किन्तु मूढ़ प्रकृति वाले राजा तमककर धनुषके निकट जाकर पकड़कर उठाते हैं, जब धनुष नहीं उठता है तब लाजके मारे नत

मस्तक होकर चल देते हैं। एक एक करके राजाओं से धनुष जब न उठा तब—

चौ०-भूप सहसदस एकहि बारा। लगे उठावन टरइ न टारा॥ डगइ न संभु सरसन कैसे। कामी बचन सती मन जैसे॥ सब नृप भये जोग उपहासी। जैसे बिन विराग संन्यासी॥ राजा अपनी कीर्ति विजय वीरता को धनुष के हाथ हारकर श्रीहत होकर अपने अपने समाज में जाकर बैठ गये। सभी राजाओं की ऐसा दुर्दशा देखकर श्रीजनकजी के मन में बहुत दुख हुआ; इसलिये अकुलाकर बोले॥ चौ० दीप दीपके भूपति नाना। आये सुनि हम जो पन ठाना॥ देव दनुज धरि मनुज शरीरा। विपुल वीर आये रनधीरा॥ दो०-कुँअरि मनोहर विजय बड़ि, कीरति अति कमनीय। पावनि-हार विरंचि जनु, रचेउ न धनु दमनीय॥ चौ०-कहहु काहि यह लाभ न भावा। काहु न संकर चाप चढ़ावा॥ रहौ चढ़ाउब तोरब भाई। तिलभरि भूमि न सके छुड़ाई॥ अब जनि कोउ माखै भट मानी। वीर बिहीन मही मैं जानी॥

इसलिए आप लोग--तजहु आस निज निज गृह जाहू। लिखा न विधि वैदेहि विवाहू॥ सुकृत जाइ जौं पन परिहरऊँ। कुआँरि कुआँरि रहै का करऊँ॥ पहिले यदि हम ऐसा जानते कि पृथ्वी वीरों से खाली है, तो ऐसी प्रतिज्ञा ही न करते, तब आज यह दिन हमें देखने को क्यों मिलता। श्रीजनकजी के ऐसे बचनों को सुनकर सभी स्त्री पुरुष श्री-जानकीजी को देखकर दुखी हुए और -चौ०--माखे लखन कुटिल भइँ भौंहैं। रदपट फरकत नयन रिसौंहैं॥ दो०-कहि न सकत रघुबीर डर, लगे बचन जनुबान। नाइ राम पद कमल सिर, बोले गिरा प्रमान॥ चौ० रघुबंसिन महँ जहँ कोउ होई। तेहि समाज अस कहै न कोई॥ कही जनक जस अनुचित बानी। विद्यमान रघुकुलमनि जानी॥ सुनहु भानु कुल पंकज भानू। कहउँ सुभाउ न कछु अभिमानू॥ जौं तुम्हार अनुसासन पावौं। कन्दुक इव ब्रह्माण्ड उठावौं॥ कवित्त—पाऊँ जो शासन तो लोक कमलासन को, बालक तमाशनके कन्दुक बनाऊँ मैं। नाऊँ पगशीश ईश दीजिए रजाय मोहिं, धाऊँ शत योजन लै कौतुक दिखाऊँ मैं॥ खाऊँ शपथ तोर तोरि शिव शरासन को, बारिके बतासन सों फोरि गहि लाऊँ मैं। लाऊँ मैं न मान अभिमान वान नाथ हाथ, यह चाप को चढ़ाऊँ अनुशान जो पाऊँ मैं॥ अबतो न सहीजात पीर रघुबीर धीर, तीर से लगे हैं बैन आयसु जो पाऊँ मैं। "ललिते" मरोरि महि मण्डल में डारौं बोरि, तोरि दिग्दं-तनिके दंतन दिखाऊँ मैं॥ रावरे प्रताप बल साँची कहौं रघुवीर, मेरु लै उखारि छिति छोर लगि धाऊँ मैं। अटकि रहे हो कहा मुखते निकारिये तो, झटकि शरासन को चटकि चलाऊँ मैं॥ दो०-तोरौं छत्रक दण्ड जिमि, तव प्रताप बल नाथ। जौं न करौं प्रभुपद शपथ, पुनि न धरौं धनु हाथ॥ पुनि न धरौं धनु हाथ नाथ, येहीं प्रण रोपौं॥ उलटि देउँ ब्रह्माण्ड पलक में यदि मैं कोपौं॥ सब राजन ने हार मान इनका मुख मोड़ौं। चरणकमल उर धार नाथ पल में धनु तोड़ौं॥ दो०--सुनहु राम रघुवंशमणि, रघुनन्दन रघुवीर। इन अपमानों ने किया, मुझको आज अधीर॥ चौ०-लखन सकोप बचन जब बोले

डगमगानि महि दिग्गज डोले ॥ सकल लोग सब भूप डेराने । सिय हिय हरष जनक सकुचाने ॥ गुरु रघुपति सब मुनि मन माहीं । मुदित भये पुनि पुनि पुलकाहीं ॥ तब श्रीरामजी ने प्रेम पूर्वक समझाते हुए श्रीलक्ष्मण से कहा— कवित्त—मेरे वीर भैया मेरे मान को रखइया लाल, मेरो अपमान मिथिलेशजू न कीनो है। जातो यदि मैं भी धनुष तीर संग राजनके, तब तो अपमान और शान में कमीनो है ॥ सुनिहैं कहूँ दाऊ क्रुद्ध होइहैं हम दोउन पै, नाहक अपमान कीनो, औरमन खीनो है। मिथिलाधिराज निमिराज हैं सयाने बन्धु अनुचितौ भाषैं तउ उचितहिं चीनो है ॥ इस प्रकार समझाकर हाथ पकड़कर दुलारपूर्वक अपने निकट बिठा लिया । तब-चौ०-विश्वामित्र समय शुभ जानी । बोले अति सनेह मृदु बानी ॥ विश्वामित्रजी ने कहा--कवित्त--सुनिये रघुवंश के सितारे दुलारे लाल, तोरि शिवचाप दुख विदेह को मिटाइये । लीजिये जयमाल पहिरि मैथिली करकंजन सों, मिथिलानिवासिन सुखसिन्धु में डुवाइये ॥ आज महि मण्डलीक मण्डल के मध्य माहिं, अचल अदाग अमल कीरति को पाइये । धनुष तोरिवे को रंच दोष न लगेगो तुम्हें याते "गुनशील" सिन्धु नाहीं सकुचाइये ॥ सुनि गुरु वचन चरन सिर नावा । हर्ष विषाद न उर कछु आवा ॥ ठाढ़ भये उठि सहज सुभाये । ठवनि जुवा मृगराज लजाये ॥ गुरुपदअरविन्द सहित अनुरागा । राम मुनिन सन आयसु माँगा ॥

श्रीरामजी ने हाथ जोड़कर कहा कि– हे मुनिवृन्द ! आप सब आज्ञा दें तो हम भगवान शंकरजी के धनुष को तोड़ें । एक तो यह हमारे ही पूर्वजों की अस्थि से निर्मित है, दूसरे शिवजी का आयुध है । अस्तु इसके खण्डन का हमें अपचार न लगे । तब ऋषियों ने कहा—दो०-मम आज्ञा से नृपति सुत, तोरहु शिवको चाप । जग कीरति विस्तार हो, लागै रच न पाप ॥ तब श्रीरामजी धनुष के निकट गये । श्रीरामजी की मधुराति मधुर मूर्ति देखकर पुरवासी मनहीं मन प्रार्थना करते हैं – दो०—हे शिव, गौरि, गणेश, विधि, देव पितर समुदाइ । जो कुछ पुण्य प्रभाव मम, होइ जगत सुखदाइ ॥ चौ०- तौ शिवधनु मृणाल को नाईं तोरहिं राम गनेश गुसाईं ॥ उस समय माता श्री सुनयनाजी अपनी सखियों से कहने लगीं-- चौ०--सखि सब कौतुक देखन हारे । जेउ कहावत हितू हमारे ॥ कोउ न बुझाइ कहै गुरु पाहीं । ये बालक अस हठ भल नाहीं ॥ जिस धनुष को रावण बाणासुर जैसे वीर छू भी न सके, वही धनुष इस परम सुकुमार बालक को दे रहे हैं । क्या हंस का बच्चा मंदराचल उठा सकता है । चौ०--भूपसयानप सकल सिरानी । सखि विधिगति कछु जात न जानी ॥ वह सखी परम चतुर थीं, अस्तु वह बोली कि–हे महारानीजी आप विचार करिये-चौ०--कहँ कुम्भज कहँ सिन्धु अपारा । सोखेउ सुयश सकल संसारा ॥ देवि तजिय संसय अस जानी । भंजब धनुष राम सुनु रानी ॥ सखी के इस प्रकार बचनों को सुनकर मन का संसय और विषाद दूर हो गया और श्रीरामजी में वात्सल्य प्रेम उमड़ने लगा ॥ तब श्रीजानकीजी माधुर्य भाव विभोर होकर

उमड़ने लगा ।। तब श्रीजानकीजी माधुर्य भाव विभोर होकर अपने मनमें सभी देवताओं से प्रार्थना करती हैं कि— चौ०—गणनायक वरदायक देवा । आज लगे कीनी तव सेवा ।। बारबार विनती सुनि मोरी । करहु चाप गुरुता अतिथोरी । तन मन वचन मोरपन साँचा । रघुपति पद सरोजचित राँचा ।। तौ भगवानसकल उरवासी । करिहिं मोहिं रघुवर की दासी ।। जेहिके जेहिपर सत्य सनेहू । सो तेहि मिलै न कछु संदेहू ।। प्रभुतन चितय प्रेम पनठाना । कृपानिधान राम सबजाना ।। सियहिं विलोकि तकेउ धनु कैसे । चितव गरुड़ लघु ब्यालहिं जैसे ।। जब लक्ष्मणजी ने समझ लिया कि अब श्रीरामजी धनुष तोड़ना चाहते हैं, तब चरण से पृथ्वी को दबाकर बोले ।। चौ०—दिशि कुंजरहु कमठ अहिकोला । धरहु धरनि धरि धीर न डोला ।। राम चहैं शंकर धनु तोरा । होउ सजग सुनि आयसु मोरा ।। इतने में श्रीरामजी धीरे धीरे चलकर धनुषके निकट आकर परिक्रमा करके खड़े हुये, तब कुछ ग्रामवासिनी गाने लगीं, पद—

धनुष अति विकट, खड़ोहै ताके निकट, उठावो चाहैं चटक अवध वारो हो । अतिसुकुमार कुमार साँवरो कोटि मार मद गार, क्रीट केरी चटक, कोमल कर कटक, भृकुटि टेढ़ि मटक, सियाको प्यारो हो ।। भाल विशाल लाल उरमाला छयलछवीलो सुघर, कसेहैं कटि फेंटो, कौशिल्या जी को ढोटो, सियाको दुलहेटो, जनक दुख मेटो, जनकपुर हो । कुण्डल लोल अमोल कानमें सजत कपोलत आय, अलक केरीझलक, परत नहिं पलक, उछल छवि छलक, ललकि उरहो ।। चितवनि चारिउ ओर चाँदसी चोरतचख चित चोर, मन्द मृदु हँसत हियेमें हठि बसत न काके उर धसत गयन्दगामी हो । रघुकुल कमल पतंग बाँकुरो क्षत्री कुल शिरमौर न देखे धीर रहत, तोरन धनु चहत ललकि करगहत कहत रघुराज हमारो स्वामी हो ।।

श्रीजानकीजी को अत्यन्त ब्याकुल देखकर श्रीरामजी ने सोचा का बरषा सब कृषी सुखाने । समय चुके पुनि का पछिताने ।। ऐसा सोचकर— गुरुहिं प्रणाम मनहिंमन कीना । अति लाघव उठाय धनुलीना ।। श्रीरामजी को उठाते चढ़ाते और खैंचते हुये कोई भी नहीं देख पाया—क्योंकि ये तीनों काम करके उसी क्षण के मध्य में ही श्रीरामजी ने धनुष को तोड़ दिया । चौ० प्रभु दोउ चाप खण्ड महि डारे । देखि लोग सब भये सुखारे ।। देवता बृन्द आकाश से पुष्प वर्षाकर अनेक प्रकार सुन्दर बाजा बजाकर मंगलगीत गाने लगे । चौ०—बरषहिं सुमन रंग बहुमाला । गावहिं किन्नर गीत रसाला ।। रही भुवन भरि जय जय बानी । धनुष भंग

धुनि जात न जानी ॥ सखिन सहित हरषीं अति रानी । सूखत धान परा जनुपानी॥ जनक लहेउ सुख सोच विहाई । पैरत थके थाह जनु पाई ॥ सीय सुखहिं बरनिय केहि भाँती । जनु चातकी पाय जल स्वाती ॥ सतानन्द तब आयसु दीना । सीता-गमन राम पहिं कीना ॥ साथ में सखियाँ मंगलगीत गाती हुई जा रही हैं ॥ पद-चलो डालो जयमाल गले रामके सुकुमारी सिया सुखधामके । नैना ये दौड़ दोऊ जा जा वहाँ लगें, डर लागता कहीं न राम पावँ में अड़े । देखि लाजैं करोड़ छटा काम के ॥ सुकुमारी० ॥ जोजो निहार पाये नीलम स्वरूप को, सो यों सभी सिहातेहैं मिथिलेश भूपको । विके बैठे बेमोल बिना दामके ॥ सुकुमारी० ॥ कोई सखी श्री जानकीजी से कहती है—पद—सुनु सिय सुकुमारि माला श्रीराम गले डालो । तुमतो जनक जू कि बेटी, जनक जू कि बेटी । ये दशरथ लाल ॥ माला० ॥ तुमतो कठिन तप कीना कठिन तप कीना, वर पायो करतार ॥ माला० ॥ इसतरह मंगलमय मंजुल गीत गातीहुईं सखियाँ श्री किशोरी जू को श्रीरामजी के निकट लेगईं ॥ चौ०—जाइ समीप राम छबि देखी । रहि जनु कुँअरि चित्र अवरेखी ॥ तब—चतुर सखी लखि कहा बुझाई । पहिरावहु जयमाल सोहाई ॥ सुनत जुगुलकर माल उठाई । प्रेमविवश पहिराइ न जाई ॥ सोहत जनु जुग जलज सनाला । ससिहि सभीत देत जयमाला ॥ गावैं छवि अवलोकि सहेली । पद—झुकि जावो तनिक रघुवीर लली मेरी छोटीसी । आप हैं ऊँचे लली मेरी नीचे; पहुंच न पावै सीर ॥ कब की खड़ी बिचार करिय मन, दया करो बेपीर । परम सुजान शीलगुण सागर नागर परम सुधीर ॥ लली०॥ दो०—सुनि सखियन के बचन मृदु, मन्द मन्द मुसुकाय । कछु सकोच युत प्यारभरि दीनो शीश झुकाय ॥ पद—तब निज हिय हरषाय किशोरी । कोमल कलित ललित करकंजन जयमाला पहिराय विभोरी ॥ निरखति नेह नमित दृगकोरन, गुरुजन लाज सकोच अथोरी । 'गुनशीला" पिय सुछवि सुधारस, पियत भई अतिसय रस बोरी ॥ जयमाला पहिराने के बाद चौ०—सखी कहहिं प्रभु पदगहु सीता । करति न चरन परस अतिभीता ॥ दो०—गौतम तियगति सुरतिकरि नहिंपरसति पगपानि । मनविहँसे रघुवंश मनि, प्रीति अलौकिक जानि ॥ सखियों ने एक गीत गाया । पद—रामइसरूप में अब आपका दर्शन होवैं । आप दुलहावने श्रीजानकीजी दुलहिन होवैं॥ आपने तोड़ाहै धनुष जोड़ते हैं हमगाठैं । कर्मका होचुका अबधर्म का बन्धन होवै ॥ खींचकर जिसको चढ़ाया था चाप शंकर का । वही डोरी तुम्हें अब हाथका कंगन होवै ॥ पहिला पूरा

हुआ अब दूसरे आश्रम को चलो। पितृ ऋण जिससे चुके अब वही साधन होवै॥ देखलें भक्त भी सेहरे कि लड़ी राधेश्याम। लोभ नयनों का इसी लाभ से पूरण होवै॥ चौ०—तेहि अवसर सुनि शिवधनु भंगा। आये भृगुकुल कमल पतंगा॥ देखि महीप सकल सकुचाने। बाज झपट जनु लवा लुकाने॥ दो०—सान्त वेष करनी कठिन बरनि न जाय स्वरूप। धरि मुनि तन जनु वीर रस, आयउ जहँ सबभूप॥ परशुराम जी का विकराल स्वरूप देखकर सभी राजा डरके मारे अकुलाकर उठकर अपने पितासमेत अपनानाम बताकर दण्ड प्रणाम करनेलगे॥चौ०-जनक वहोरि आय सिर नावा। श्री जनक जी को प्रणाम करते देखकर परशुराम जी ने कहा—प्रतिपाल प्रजाको सदैव करो, पनधर्म विवेके वितान तनेरहो॥ निज शत्रुन तालि धरातल पै, तिहुंलोक में कीरति पुंज घने रहो। सनमान सनेह सदा सबके, "कविधर्म" सनेह सुधा सों सने रहो। परमेश्वर प्रेम पयोनिधि में, चिरकाल विदेह विदेह बने रहो॥ सीय बुलाय प्रणाम करावा॥ श्री मैथिली जू को प्रणाम करते हुये देखकर परशुराम जी ने आशिर्वाद दिया कि-भवे समस्तं सफलं त्वदीयं, मनोरथं वै जनकात्मजे ही। पतिव्रतत्वे सुदृढ़मवाप्ये; यशस्विनी मोदन सर्व लोके॥ कवित्त गंग औ जमुन जौलौं, सूर्य और चन्द्र जौलौं, क्षिति आकाश जौलौं, आनन्द वनो रहै। शेषशिर भारजौलौं, जगत पसार जौलौं नाम निरधार जौलौं सुयश वनोरहै॥ तुलसी का पेड़ जौलौं, सालिग्राम मूर्ति जौलौं, वेद प्रणधाम जौलौं उर्दाध खनो रहै। तौलौं श्री जनकदुलारी जनकजू की, तुम्हारे सोहाग सिर सेंदुर वनो रहै।

दो०—जियहु सुयश जग छाइके, अति सुषमा सरसात। पतिव्रत माहिं प्रवीण हो, रहै अचल अहिवात॥ चौ०—विश्वामित्र मिले पुनि आई। पद सरोज मेले दोउ भाई॥ श्री राम जी और श्री लक्ष्मण जी को प्रणाम करते देखकर परशुरामजी विश्वामित्र जी से पूछते हैं कि—सवैया—मारका कौन शुमार करै ये, अपार भरे सुषमान के भौन हैं। जानिपरै बलवान कछू धनुवाण लिये इतको कियों गौन हैं॥ मोहू को मोहत है "ललिते" अति ही द्युतिसों यह साँवरो जौन है। अवनी में न ऐसो सुनो कबहूँ, कहो गाधितनय ये बालक कौन हैं॥ कवित्त रूपको निधान सूर्य-चन्द्र सो उदोतमान, चंचल तिरीछेनैन भृकुटी चढ़ाये हैं। लागिहै समाधि आज ऐसो कछु लागै मोहिं, साँवरो सलोनो मुखमोर मुसुकावै है॥ नाहीं अनुरागवश मनमोर थामे थमै, मरोचित योगते वियोग में लगावै है। ऐहो 'कविधर्म" धीर जन धारो जाय, कौन को कुमार वेगि कौशिक बतावै है॥ तब विश्वामित्र जी ने कहा—चौ०—रामलखन दशरथ के ढोटा। दीनअशीष जानि भलजोटा॥

परशुरामजीने कहा । कवित्त—गंग जमुनधार जौलौं, सृष्टि बिस्तार जौलौं शेषशिरभार जौलौं अम्बर तनोरहे । गौरि शम्भुप्रेम जौलौं; नेमिन में नेम जौलौं, क्षेमिन में क्षेम जौलौं सुखसों सनोरहे ॥ हनूमानगदा जौलौं, चन्द्रसूर्य प्रभा जौलौं, प्रेमरमानाथको रमामें बनोरहे । तौलौं दिगम्बर त्रिशूलधारि हाथ माहिं, रंचा टंकोर धनु करतही बनोरहे ॥ दो० होउ निडर अरिते सदा समर न जीतै कोय । चिरंजीव युगयुग जियो, कीर्तिलतावर होय ॥ तदन्तर परशुरामजीने श्रीविदेहजीसे अनेकराजाओं के आनेका कारणपूछा, श्रीमिथिलेशजीने अपनी प्रतिज्ञा करना और धनुषका खण्डन होना बतलाया । जिसे सुनकर परशुरामजीने बहुत क्रोध किया । श्रीरामजीने अपनी सुधासानी मधुर प्रियबानी से परशुरामजी को प्रबोधकरादिया, तब परशुरामजीप्रार्थना करके तपस्या करने चलेगये । तत्पश्चात् विश्वामित्रजी की आज्ञासे श्रीजनकजी ने दूतों द्वारा समाचार पत्र भेजवाकर श्रीदशरथजी को बरात समेत श्रीजनकपुर में बुलवा लिया ॥

मंगल आजु जनकपुर मंगल मंगल हे । मंगल तनेउ बितान गान धुनि मंगल हे ॥ मंगल बाजन बाजहिं पुर नभ मंगल हे । मंगल वस्तु लए साजहिं मिलि सब मंगल हे ॥ मंगल मन्त्र उचारहिं महिसुर मंगल हे । मंगल तनु धरि धाय उमगि जनु मंगल हे ॥ मंगल दुलहिनि चारु दुलह चारों मंगल हे । मंगल व्याह उछाह गोद प्यारी मंगल हे ॥ मंगलगान ॥

आजु सियाजू के व्याह की लगनियाँ ए सखी घरघर मंगल, बाजन बाजै घनघोर ए० ॥ आय बरियात साजि विविध बाहनियाँ ए०, रघुकुल मनि सिरमौर ए० ॥ सुनि ना परत सखी बतियाँ अपनियाँ ए०, जुरे अगवनियाँ अथोर ए० ॥ लखि बरषावैं बहु सुरन सुमनियाँ ए०, जयति जयति करैं सोर ए० ॥ मोद उमगि गावैं प्रेम मगनियाँ ए०, छवि छकि छकि तृण तोर ॥ ए० ॥

आजु जनकपुर घर-घर मंगल आनन्द अधिक उछाह ए माई । सजि बरियात सुपुत्र बिआहन ऐला अवध के नाह ए माई ॥ हाट बाट महँ चहल पहल छाएल उमग सबहिं उर माह ए माई माउ । रानी सुनयना के जाई जुड़ाउनि कैलनि सुखी सब काह ए माई ॥ चारिउ कुमरि जेहने छथि तेहने वर चारिहुं रूप धारि ए माई । जानि परइ जनु चतुर विधाता रचलनि सोंचि बिचारि ए माई ॥ हम सब प्रगट भाग्य बस भेलहुं मिथिला अम्बाक गोद ए माई । कोहबर बैसि सरस सुख लूटब प्रमुदित मोद विनोद ए माई ॥

देखो-देखो री सब चारों सुन्दर वर; राजा दशरथजी के लाल माई हे। चारों कुमार जोग आनि मिलौलनि, श्रीगौरी शंकर कृपाल माई हे ।। सिर पै सुरंगी चीरा तुर्रा कलंगी हीरा, केशर खौर ऊँचे भाल माई हे । अजब अनोखी आँखि कजरा सुरेख रेखी, चितवत करत निहाल ।। कुण्डल मनिन जर उलटे कपोल पर, बुलकनि करत कमाल माई हे । जियरा अरूझै लखि औरो न सूझै देखी, मुसुकत मुख दै रूमाल ।। अँगुरिन छल्ला छाजै नख सिख रूप राजै, गरवा में गेरे मनि-माल ।। सौंपि संपत्ति साज राखैं विदेहराज, मिथिले इनहिं सब काल माई हे । प्रेम बढ़ाय चाहे लोन पढ़ाय चाहे, लेबै बझाय मंत्रजाल माई हे । मोद न तो वियोग बौरी हो विरह रोग, लागत जीवन जवाल माई हे ।।

रघुवर धीरे धीरे चलिये लली की गलियाँ । लखु खिलि रही कामिनी कुमुद कलियाँ ।। मुखचन्द को चकोरिका चखनि अलियाँ । छवि छाकने दे छीने क्यों छयल छलिया ।। नोखे नयननि नुकीले सुधि बुधि दलिया । फल पाइहौ किये का लखि सिय ललिया ।। मन्द मन्द हँसि हेरैं गुनि भाव भलिया । मोद तन मन वारैं होय वलि बलिया ।। पद ३४ ।।

मिथिला के नतवा से बढ़ि गैले शान रे । हमरा नै चाहिय पाहुन जोग जप ध्यान रे ।। मिथिला जनम मेल सुकृत महान् रे । लाड़िलो कृपा सँ पैलौं आहाँ सन मेहमान रे ।। जिनकी कृपा से छुटै त्रिगुन महान रे । तिनका के कैलौं हम गाँठि से बंधान रे ।। हमरा नै चाहिय पाहुन धनुष अरु बान रे । हमरा तो चाहिय पाहुन मन्द मुसकान रे ।। विश्वम्भर छथि विदित जहान रे । लाड़िली के अँगना में कूटै छथि धान रे ।। पद ४६ ।।

चारों दुलहा देहिं भांमरिया ए । संग सोहति दुलही नागरिया ए ।। श्याम गौर गौर श्याम चारों जोड़ा जोड़िया, हरेहरे होत चहुंओरिया ए । शिरनि पै सोहै मणिन मौर मौरिया, दामिनी की छवि छीनै छोरिया ए ।। रतनारी कजरारी अजब अँखरिया, लखितहिं करे बेखवरिया ए ।। अंचल चदरिया में परीहैं गठरिया, बाँधे हैं कि बूटी बस-करिया ए ।। नवरंग मणिन की सुपली सोहरिया, लावा छिरियावैं भरि भरिया ए ।। उमगि उमगि गावैं अलिगन गरिया सुख सरसत बेसुमरिया ए ।। जयति जयति जय जय होत सोरिया, सुर करैं सुमनकी झरिया ए ।। परै मनि खम्भन्हि में दम्पति छहरिया, जागै जोति जगर मगरिया ए ।। मानो रतिपति जानि पितु महतरिया, प्रगटि दुरत बेरि बेरिया ए ।। फूली न समाति लखि मोदिया किंकरिया लली लाल लखनि लजोरिया ए ।। पद ५८ ।।

कौने नगर के सिन्दुरिया सिन्दूर बेच आयलहे । आगे माई कौने नगर के कुमारी धीया सिन्दूर बेसाहल हे ॥ अवध नगर के सिन्दुरिया सिन्दुर बेचे आयल हे । मिथिला नगर के कुमारी धिया सिन्दुर बेसाहल हे ॥ कौने रंग रसिया जे बरवा से सिन्दुर चढ़ावल हे । कौने धीया वारी सुकुमारी से सिन्दुर सँवारल हे ॥ श्याम रंग रसिया जे बरवा से सिन्दुर चढ़ावल हे । सिया धीया वारी सुकुमारी से सिन्दुर सँवारल हे ॥ जय जय होत चहुंओर सुमन बरसावल हे । कदमलता पद गावल सुनि सुख पावल हे ॥

रतन जड़ित मण्डपतर राजत दुलहा श्याम सलोना री ॥ सिर सुन्दर सोवरनि मनि सेहरा श्रवननि झलकतरौना री ॥ श्याम वदन पर अलकें झलकत मानो नागिनि के छौना री । वामअंग सोभित सिय सुन्दरि अँग-अँग छवि मन हरना री ॥ प्रियासखी ऐसी मृदुजोरी अनत नहीं कहीं होना री ॥ पद ६७ ॥

राजति राम जानकी जोरी । स्याम सरोज जलद सुन्दर वर दुलहिनि तड़ित वरन तनु गोरी व्याह समय सोहति वितान तर उपमा कहुं न लहति मति मोरी । मनहुं मदन मंजुल मंडप महँ छवि सिंगार सोभा इक ठौरी ॥ मंगलमय दोउ अंग मनोहर ग्रथित चूनरी पीत पिछौरी । कनक कलस कहँ देत भाँवरी निरखि रूप सारद भइ भोरी ॥ इत वशिष्ठ मुनि उतहिं सतानंद बंस बखान करैं दोउ ओरी । इत अवधेस उतहिं मिथिलापति भरत अंक सुखसिंधु हिलोरी ॥ मुदित जनक रनिवास रहस वस चतुर नारि चितवहिं तृन तोरी । गान निसान वेद धुनि सुनि सुर वरसत सुमन हरष कहैं कोरी ॥ नयनन को फल पाइ प्रेम वस सकल असीसत ईश निहोरी । तुलसी जेहि आनंद मगन मन क्यों रसना बरनै सुख सो री ॥ पद ६८ ॥

दुलह दुलही की छवि बाँकी मुबारक हो मुबारक हो । अनूपम सखि जुगल झाँकी मुबारक हो मुबारक हो ॥ लसै शिर मौर मौरी व्याह भूषण औ वसन दोउ तन । न उपमा मिलि सकै जाकी मुबारक हो मुबारक हो ॥ अमित रतिनाथ छै लज्जित निरखि सियवर सलोने की । त्यौं रति लखि छवि जनकजा की मुबारक हो मुबारक हो ॥ जिन्हें लखि जोगिजन तरसैं विराजैं मध्य मण्डप पर । अहै बड़िभाग मिथिला की मुबारक हो मुबारक हो ॥ मनोहर जुग्म शशि को त्यागि पल देखैं चकोरी सी । ये आँखैं नेहलतिका की मुबारक हो मुबारक हो ॥ पद ७१ ॥

द्वार की छेकाई नेग लूँगी मन भाई हाँ तब जाने दूँगी, कोहवर सदन सुहाई ॥ सकुच विहाय दीजै दीनी है जो माई हाँ तब जाने दूँगी, कोहवर० ॥ चाहे

सोई मानिये जो कहूँ समुझाई हाँ तब जाने दूँगी, कोहवर० ॥ दीजै मेरे भैया से निज बहिनो की सगाई हाँ तब जाने दूँगी, कोहवर० ॥ मोद नहीं तो लीजै सिया शरणाई हाँ तब जाने दूँगी, कोहवर० ॥

विश्वामित्र मुनि ज्ञानी पिताजी से माँगि आनी, संगमें न हम कछु लायो हे सहेलिया । दिल एक साथ लायो प्यारी तूँ लियो चुराय, तिरछी नजर को चलाय हे सहेलिया ॥ देर होत जाने देहु बात मोरी मानि लेहु, खड़े खड़े चरण पिराय हे सहेलिया । मन मोरा मोहि लियो प्यारी सखी वर जोरी, श्री निधि लियो है लुभाय हे सहेलिया ॥

लखि कौतुक घर में नारि हँसि हँसि पूछति हैं रघुवर से । तुमहिं जगत को सार कहहिं मुनि कहि न सकति हम डर से ॥ तुम नहिं पुरुष न नारि कहहिं श्रुति खेलहु खेल मकर से । सो लखि परत मकर कुण्डल से और किशोर उमर से ॥ दशरथ गौर कौशल्या गोरी तुम श्यामल केहि घर से । दोऊ के हरि ध्यान प्रगट भये अस हमरे अटकर से ।। व्यङ्ग चतुरता गारी सुनि के देखा राम नजर से । भई कृतारथ देव मानवहिं जनि ए जाहिं नगर से ॥

प्रिय पाहुनि रुचि से जेमि लिय, छमि भूल चूक गुनि अबुधि तिय ।। आहाँक जोग किछु वनलो नैं व्यंजन से बिचारि सकुचाइ जिय । भावक सुखन स्वभाव अहाँक सुनि पुनि पुनि अति हुलसाइय हिय ।। जानव तखन कहव आहाँ जखनहिं अमुक वस्तु कने और दिय । किञ्चित वचन बजैत लजाइ छी परम कृपालु कहाइ छी किय ।। जनि लजाउ निज कुलाचार पर संत सुखद अति अवध धिय । मोद मुदित मन विनती सुनावथि सिरकिन लखि लखि सीय पीय ।।

प्यारे रसिया राजकिशोर ऐ प्यारे रसिया । जेमिय व्यंजन रुचिर हमारे हेरि कृपा की कोर ।। है अनूप गुन रूप तिहारे अचरज भरे अथोर । हौ साँचे कि तो साँचो कहिये प्रश्न के उत्तर मोर ।। लोकपती तुमको वतलावैं चारिहुं श्रुति करि सोर । रावरो बहिनि अहैं लोकहिं में तिन पति में क्या निहोर ।। जगत पिता तुमको जग जानत मानत में नहिं खोर । भैं ताते निज पितहूँ को पितु चाल निराली तोर । सव जग सार तुमहिं बतलावैं सन्तन मतो बटोर ।। भरत लखन रिपुसूदनहूँ के सार में क्या तब जोर ॥ नाम पितामह को अज तेरो आपहुं अज यह घोर । मोदलता को बेगि बतइये सिय दूलह चितचोर ।।

जनि मनहिं लजाउ कनै और पाउ यो । वनल अनोन सनोन जे हे किछु जानि

गँवारि छमा छाउ यो । प्रेमीजन चितवन मुसुकन हित तरसैत छथि तकि मुसुकाउ यो ।। मिलत दहेज चाहब जे जे से ताइला उदासी नै मन लाउ यो । मिललनि सीता दुहुं कुल तारनि हिनक आदरभाव हिय लाउयो ।। हँसमुख पानहु नीक बहाइ छथि हँसैत मोद हिय बसि जाउ यो ।।

रघुवर जेंवत जानि एक सखी अंचल दे हँसि बोली जू । सुनहु लाल तुमका के जाये सत्य कहहु सब खोली जू ।। सुनहु प्रिया हम नृप दशरथ के जासु सुयश श्रुति गावैं जू । भूपति गौर श्याम तुम लालन हम कैसे पतियावैं जू ।। सुनहु चतुरि हम श्याम न होते को श्रृंगार रस गावैं जू । हमरे श्रीजनकलली रस के रस विनु बोले पिय आयो जू ।। कहहु कमल मकरन्द मधुर हित भँवरहिं कौन बुलावै जू । रामचरण सखि मरम वचन सुनि सब सखियाँ मुसुकावैं जू ।। वोलवना भयो काहे कारे । भैया गोरी बापहुगोरे, गोरे रिपुहन लखन गना ।। यहिको कारण कहि समुझावो, जस जस होवै बात छना । जानि परत कछु भेदभयो है. तेहिते शंकित जगत जना ।। हमनहिं काहहैं कतहुं जाय जग, केवल जानन चाहघना । अबतो हमरे भेलैसर्वस, सिय जू से करिके ब्याहपना ।। रावर दोषहिं गुनिहैं भूषण, चन्द्र कालिमा यथा भना । "हर्षण" धोरे कहहु हमहिं ते, तुम सतवादी वंश घना ।।

छाड़ि सुसरारि ललन कहाँ जैहौ ।। मिथिला से जो अवध को जैहौ साँची कहो कब ऐहौ । एक बेर आये सियाजू को पाये फिर ऐहौ कछु पैहो ।। गारी देत सियाजू के नाते गारी के दुख जनि लैहौ । श्रीरघुराज नागर ननदोई सरहज के जनि भुलैहौ ।। पद ११७ ।।

ललन ससुरारि छाड़ि कहँ जैहो. यह सुख कतहुं न पैहो । सासु ससुर सारी सरहज सब मिथिला विरह सतैहौ ।। मानि ननद बाते ननदोई फिरि विधु बदन देखैहौ । प्रमदावन भूलेहु जनि रघुवर निज कर पाति पठैहो ।। जो तुम साँच अवध नृपनन्दन साँचि कहो कब ऐहौ । ज्ञानाअलि तब सुफल मनोरथ जब हँसि कंठ लगैहौ ।। ११८।।

सोहत शिरमौर, बनरा बना क्या बाँका । दीन्हें नयन विच कजरो बसन तन पियरो, लेत ठगि जियरो, केशर की खौर ।। घूमें अलीं मिथिला की, प्रेम में छाकी, छवी पै लला की, सब ठौरहिं ठौर ।। होवैं सियापति रामा; मोहनि सुख धामा, कहैं सब बामा, पूजैं गन गौर ।। बनरा॰ ... ।। पद २८ ।।

सेहरा छविदार पाहुन बदन पर राजे । लोचन सरस अनियारे, अरुण कजरारे ललित मनहारे चितवनि सुखसार ।। वोलनि मधुर मनहरनी, हृदय रस भरनी सखिन वश करनी, टोना जनु डार ।। जामा जरकसी सोहै, सबनि मन मोहैं, सकृत

जेहि जोहैं, तन मन दे वार ।। सीताशरण सुघराई– शेश श्रुति गाई, कहत सकुचाई, पावैं नहिं पार ।। पाहुन…… ।।

नवल बनी नीकी राज किशोरी । पहिरे नील जरकसी सारी सोहत हैं तन गोरी ।। व्याह विभूषण भूषित अंगन चितवन में चितचोरी । सुधा मुखी रघुराज बने की, सुधि बुधि सम्पति छोरी ।।

देखो देखो सुछबि दुलहिन की सहेलीगेरेसँगकी सजनसे आलाहै ।। शीशचन्द्रिका चन्द्र सिमिटछबि छाकत रतिहुं अनंग; कारेकच कुटिलाई कहरकर, लट भामिनी भुजंग श्रवणझलक झुमकनकी, हलकबुलकनको, सजनसे आलाहै ।। विन्दुविचित्र माल भल चमकत, सरसत सरससोहाग, नीरजनैन सुसैन नवल उर उमगावत अनुराग । मधुराई मुसुकनकी, सुदुतिदशननकी, सजन० ।। कंठमाल-कंठा-कंठसर हियहार हमेल सुढंग बंद-विजायट–कंकण करमणि, कर दामिनि दुतिदंग । रसिकजनन मनभावन, सुबस्त्र सोहावन, सजन० ।। नूपुर नगन नखन ज्योती गति, शरणागति दरशंत, अरुण वरण आकर मंगलपन, पगतल मंजु लसंत । मनमोहन मदगंजन "मोहन" मन रंजन सजन सेआलाहै ।।१।।

लामी लामी केशिया तोरि साँवली सुरतिया–हायरे दुलहा । दुलहा बोलल मीठेबोल हायरे दुलहा ।। मणिनमौरियामाथे जामाजरतरिया-हायरे दुलहा । अलक हलनियाँ अनमोल, हायरे० ।। नैनाकजरवा तोर छेदेला जिगरवा हायरे० । तिरछी तकनियाँ विषघोल, हायरे० ।। एकमनकरे तोरे संगसंग रहितों हायरे० । एकजिया करे डामाडोल, हायरे० ।। 'मोहन" मनहरवा की बड़ी बड़ी अँखियाँ हायरे० । लखतविकानी विनमोल हायरे० ।। २ ।। निरखु सजनी दुलहा बाँका सँवरिया ।। ललित विशालभाल पर राजित, मंगल मंजु मौरिया । अनियारी कजरारी अँखियन, चितवत कर चित चोरिया ।। पटुकापीत पीतरँग कटिपट, जामारंग केशरिया । "मोहन" ऐसे सुघर बनरे को, लखि सुखलहत नजरिया ।। निरखु० ।। ३ ।।

तनमद भैले वेहाल-वेहाल छयलारसिया ।। दुलहिन सिय सुन्दरिया हे वलिहार–वलिहार छयला रसिया । दुलहा अवधसरकार सरकार छयला रसिया ।। दुलहा के सोहै मौरमाथे,वलिहार-वलिहार छयला रसिया । दुलहिनके सोहै चन्द्रहार चन्द्रहार छयला रसिया ।। पीतपटुका पिताम्बर हे वलिहार-वलिहार छयला रसिया ।। वन्नीतन सारी सोहार-सोहार छयला रसिया ।। कोटिकाम पिय उपमा हे वलिहार-वलिहार छयला रसिया । सिय छबि अनुपम अपार-अपार छयला रसिया ।। श्यामगौर दोऊ जोरिया हे वलिहार-वलिहार छयला रसिया । "मोहन" प्राण अधार अधार छयला रसिया ।। ४ ।।

रघुवर ! बड़े भाग्य से मिथिला में ससुरार पवलऽजी ॥ धनुष तूरि के पुरुषारथ के गर्व न मन में करिह । एक एक गौरव मिथिला के चुनि चुनि हिये में धरिह ॥ इहँवे विश्व विजय कल कीरति के भण्डार पवलऽजी ॥ रघुवर० ॥ एकएक मिथिलापुर वासी सकल सुकृत के राशी । सकल सुकृत संकल्प कर दिये सकल जनकपुर वासी । तब निज बँहियन अवधविहारी बल वरियार पवलऽजी ॥ रघुवर० ॥ गुरुता और कठिनता धनुके लखि मन ही मन थाके । कृपा कटाक्ष प्राप्ति हित रघुवर हारि सिया दिशि ताके ॥ सिय के ताकत ही हारि ! ताकत अपरम्पार पवलऽजी ॥ ॥ रघुवर० ॥ आज्ञा दई सिया धनु को, कर अटकर इनके वल का । बिनु प्रयास जितना उठा सकें, हो जा उतना हलका । तब तू धीरे से धरि धीर, धनुष के पार पवलऽजी ॥ रघुवर० ॥ सिय संकेत समुझि शिवजी, निज धनु को यही सिखाये । जैहो टूटि राम कर परसत, गुरुतर हाथ पराये । एतना बड़े बड़ेन के एहिजे परम दुलार पवलऽजी ॥ रघुवर० ॥ कौशिक मुनि के जन्तर मन्तर, माँ गिरिजाके वानी । प्रेमीजन के मंजु मनोरथ, पुनि मिथिला के पानी । तब तू दूनो भैया भृगुपति के ललकार पवलऽजी ॥ रघुवर० ॥ पाँच वरस में सहज उठाई, बाँया कर वैदेही । पन्द्रह वर्ष किशोर उमर में धनुष उठाये तेही । फिर भी सिर नवाय सिय सन्मुख सिय कर हार पवलऽजी ॥ रघुवर० ॥

सकल जगत में दानि-शिरोमणि बिना विवाद कहइलऽ । जनकपुरी में जनक राय के दान ग्रहीता भइलऽ । गुरुजन सम्मुख सिय सी सुन्दरि हाथ पसार पवलऽजी ॥ रघुवर० ॥ मिथिलापति से ससुर सनेही सासु सुनैना माई । श्रुतिकीरति माण्डवी उर्मिला सारी परम सुहाई । सरहज सिधि प्यारी और लक्ष्मीनिधि से सार पवलऽजी ॥ रघुवर० ॥ सकल नगर नर नारि यहाँ के धर्मशील शुचि सन्त । पुर चहुं दिशि सर सुभग वाग वन, बारह मास बसन्त । दुर्लभ सकल लोक में अइसन यहाँ बहार पवलऽजी ॥ रघुवर० ॥

गारी प्यारी ससुरारी की अमृत हू से मीठी । नीक लगे तो औरी खातिर जल्दी लिखिहऽ चीठी । बूझिहऽ होली के त्यौहार पर उपहार पवलऽजी ॥ रघुवर०॥ 'नारायण' के व्यंग्य वचन सुनि तनिको बुरा न मनिहऽजी । सिया बहिन के नाते पाहुन ! सखा अपन करि जनिहऽजी ॥ ई तो गारी के मिस सार हृदय के प्यार पवलऽजी ॥ रघुवर० ॥

—:❀:—

ब्याह के पश्चात् बरात फाल्गुन तक श्री जनकपुर में ही रहगई, तब सारी सरहजों ने दूलह के आनन्द वर्धन के लिये होली का उत्सव मनाया। उसका संकेत मात्र यहाँ किया जाता है॥

पद—सखि होरीमें आये ससुरारी किशोरी जू के साजन। सब सखियाँ मिलि पकरि के लायब, नरसे बनायब नारी॥ नकवेशर झुमका पहिरायब, कसके पेन्हायब सारी। अँबिर गुलाल लगायब मुखमें, तकिमारव पिचकारी॥ ढोटका भैयासे साज वजवायब, तोहरो नचायब दैं दैं तारी। सियजू के पैयाअहाँलागू, नत कहिये हमहारी॥१॥ वनिआये छैला होरीके वनिआये। चीराचारु शीशपरराजत, भालतिलक दिये रोरीके। फेंटगुलाल हाथपिचकारी, संगसखा लिये जोरीके॥ होरी होरी करत हरत-मन, चीर भिगायो गोरीके। रामरसिक अवहोन चहतहै, हल्ला जनककिशोरीके॥२॥ होरी आई लला सब भाँतिभली होली आई॥ खेलो दिल खोलो वेशकअब, सेनसजी मिथिलेशलली। जानपड़ेगी आजरँगीले, कठिनकला वर वामचली॥ वहुवासर बीते विलसोगे, फैलफन्द विच छैल छली। उर उत्साह सजाय विलोकिय, सन्मुख युगल अनन्यअली॥३॥ किसी सखी ने कहा—प्रीतम होरी मचाना होगा। ललित गुलाल सुभग गालनपर, मलना होगा मलाना होगा॥ केशर रंग वसनसुठि अँग अँग रँगना होगा रँगाना होगा। भरि उमंग लै लै उमंग गति, नचना होगा नचाना होगा॥ सरस फाग अनुराग रंग रस, गाना होगा गवाना होगा। हरिजन हरषि हरषि उर कण्ठन, लगना होगा लगाना होगा॥४॥

मदछाकी छवीली गहि प्रीतमको रँग बोरें री। मन्दविहँसि मुखमोरि फेरिहग, झकझोरनि चितचोरे री॥ छीनिलई करते पिचकारी, मुखमारत वरजोरे री॥ रसिक अलीराघव कर जोरत, गहि रहि अंक न छोरे री॥५॥ रँगकी तोहि लाजरँगीले रसिया॥ रहियो देत दरश नयननको, भागि न जइयो परदेशिया। आश न जावै कबहूँ मिलनकी, रसीरहे ऐसी रसिया॥ गहिके हाथ छोड़मत जइयो, नेह निवहियो मनवसिया। अब वलदेव बनायेरहियो, अपने चरणनकी दसिया॥६॥ छके दोउ रंग रँगे नव गात। खेलिफाग अनुरागन भरिभरि, अंशगहे अलसात। अँविरभरीं अलकैं ए कपोलन, अनुपम छविछहरात। नीदभरे चितवन चितचोरत, मन्द मन्द मुसुकात। सियाअली यह फाग मुवारक यह रस रँग की रात॥७॥ रँगभरी जोरी सदा चिरजीवो। सदाविहार करो रँगमन्दिर रंग किशोर किशोरी। सदासोहागिनि की अनुरागिनि रँगी रहो वड़भाग वढ़ोरी। पियके प्राणवशो सियसुन्दरि सियमन श्याम वशोरी॥ पियकी चाह सुचाक लौ रहो, सियजू की मया स्वाति वरसोरी। सियमुखचन्द्र सुधारस द्रवो-नित, पियके नयन चकोरी॥ हमरे नैन प्राणके सर्वस, अधिक अधिक सुख रस सरसोरी। (श्री) कृपानिवास उपास महलकी टहल लगीसो लगोरी॥सदा०॥ ८॥

श्रीसीताराम लीलामाधुरी सम्पूर्ण—

परात्पररूप–चारपादविभूति

[बृहद्ब्रह्मसंहिता प्रथम पाद अध्याय १३ श्लोक ८८ से आगे पृ० ४७ से ५० तक]

प्रकृतेः पुरुषस्यापि कार्यमात्रस्य सत्तमम् । आत्माधारस्य रूपं च बीज वृक्षस्य वै यथा ॥ ८८ ॥ यथः पिण्डे यथा वह्निरलक्ष्योऽपि पृथक्स्थितः । तापयन्स्वप्रकाशेन परमात्मा सनातनः ॥ धरित्री सर्वबीजानां प्रावृट्कालेन सर्वतः । धत्तेङ्कुराणि सर्वत्र ह्यसंपृक्तानि वै यथा ॥ ९० ॥ काल कर्मेच्छया विष्णोः स्वाश्रितान्यणुरूपतः । तथा भवन्ति विप्रेन्द्र व्यक्तानि स्थूलरूपतः ॥ ९१ ॥

अर्थ—प्रकृति और पुरुषरूप में परमात्मा का जितना भी कार्य है । उसके भीतर परमात्मा इस प्रकार आत्मा और धारक रूप में रहते हैं । जिस प्रकार वृक्ष में बीज रहता है ॥ ८८ ॥ और इस जड़चेतनात्मक जगत के भीतर वह सनातन पुरुष परमात्मा इस प्रकार से रहते हैं, कि जैसे अग्नि अलक्ष्य और पृथक होने पर भी लोहे के पिण्ड में अपने प्रकाश से लोहे तपाते हुये रहता है ॥८६॥ जैसे समस्त बीजों को अलग अलग रूपों में सर्वत्र धारण करनेवाली पृथ्वी वर्षाकाल में सभी जगह अंकुरों को धारण करती है ॥ ९० ॥ हे ब्राह्मण उसी प्रकार भगवान् की काल कर्मरूप इच्छा से, अपने आश्रित हुये अणुरूप आत्मा स्थूल रूप में प्रगट हो जाते हैं ॥ ९१ ॥

मुक्तयेनिर्विकारोऽसावात्मानं व्यतनोद्विभुः । न कर्मफल भोगार्थं गुण–मय्या न मायया ॥९२॥ ज्ञानेनैवाहमेकोऽहं बहुस्यामि विनिवृत्तये । मामाराध्य ममैवांशैरभिन्नैः प्राकृतात्मनाम ॥ ९३ ॥ शुद्ध सत्त्वेन द्रव्येण ह्यनावरणरूपिणा । आविर्बभूव भगवानंशेनाऽऽधाररूपतः ॥ ९४ ॥ अयमंशो भगवतो ह्यभिन्नोऽप्रा–कृतोमम । भगवानेव नो जीवो यो मया बध्यतेऽवशः ॥ ९५ ॥

अर्थ—वही अव्यक्त निर्विकार भगवान इन अणु आत्माओं को मोक्ष देने के लिये अपने रूपों को प्रगट करते हैं । उनका वह रूप न तो त्रिगुणमयि माया के द्वारा बना है । और न कर्मफल भोगने के लिये ही है ॥ ९२ ॥ क्यों कि इन प्राकृत रूपधारी मेरे अभिन्न अंशों ने मेरा आराधन किया है । अतः इनके मोक्ष के लिये एकोऽहं बहुस्यामि इस श्रुति के अनुसार मैं अपने ज्ञान बल से रूप धारण करता हूँ ॥ ९३ ॥ प्रकृति के आवरणों से रहित आधार रूप अर्थात् सच्चिदानन्द ब्रह्मधाम

स्वरूप भगवान अपने शुद्धसत्त्व द्रव्यमय अंश से अनेक रूप धारण करते हैं ॥९४॥ भगवान से अभिन्न यह मेरा अप्राकृतिक अंश यद्यपि मेरे द्वारा परवश हो करके बाँधा जाता है। तो भी यह जीव भगवान् नहीं है ॥ ९५ ॥

न मुक्तो नापि नित्यस्तु जीवादन्यः परः पुमान् । द्विहस्तं ह्येकवक्त्रं च शुद्धस्फटिक सन्निभम् ॥ ९६ ॥ सहस्र कोटि वह्नीन्दुलक्षकोट्यर्क संनिभम् । पीताम्बरधरं सौम्य रूपमाद्यमिदं हरे ॥ ९७ ॥ ध्यानैक साधनं ध्येयं योगिभि- र्हृदयाम्बुजे । मरीचिमण्डले संस्थं चक्राद्यायुधलाञ्छितम् ॥ ९८ ॥ किरीट हार केयूर वनमाला विराजितम् । पश्यन्ति सूरयः शाश्वत्तद्विष्णोः परमं पदम् ॥९९॥ वासुदेवादि विख्यातं ततोऽन्यत्समपद्यत् । वासुदेवाभिधः सोऽपि ह्येकवक्त्र चतुर्भुजः ॥ १०० ॥

अर्थ—इस प्रकार यह क्षर, अक्षर. निरक्षर स्वरूप जड़चेतनात्मक ब्रह्मसृष्टि वर्णन किया है। प्रेरक इन तीनों से परे है। उस प्रेरक को न मुक्त कहा जा सकता है। न नित्य ही कहा जा सकता है। क्यों कि वह जीवात्मास्वरूप चैतन्यशक्ति से परे परपुरुष है। उस प्रेरक का रूप शुद्ध स्फटिक मणि के समान प्रकाशमान दो हाथ और एक मुख वाला है ॥ ९६ ॥ नोट—उपर्युक्त श्लोक ९६ में परात्पर रूप का वर्णन है। यहाँ पर "द्विहस्तंह्येक वक्त्रं" से दो हाथ एक मुख ही स्पष्ट है। तथापि ग्रन्थ प्रकाशक महोदय ने अप्रसंगित रूप से चक्रादिक आयुधों को धारण करना कहा है। मैं ही क्या कोई भी बुद्धिमान यह स्वीकार न करेगा कि दो हाथों में चार आयुध सुशोभित होंगे। अतः अधिक अंश में संभव है कि ग्रन्थ प्रकाशक श्रीमान चतुर्भुज रूप के उपासक होंगे। अस्तु अपनी भावना के बाहुल्य में आकर दो हाथों में चक्रादिक चार आयुधों का संकेत किया। दो हाथों में धनुर्बाण का होना ही संभव है ॥ उस परमात्मा का प्रकाश हजारों करोड़ अग्नि और चन्द्रमा तथा लाखों करोड़सूर्य अर्थात् अनन्त अग्नि, चन्द्र एवं अनन्त सूर्य के समान है। वह महान् सुन्दर परम सुकुमार अत्यन्त मधुर रूप पीत बस्त्रों को धारण करनेवाले हैं। यहरूप भगवान् के समस्तरूपों में आदि है ॥ ९७ ॥ यही परात्पर रूप योगियों के द्वारा हृदय कमल में ध्यान करने योग्य है। क्यों कि इस रूप का एकमात्र ध्यान ही साधन है। यही भगवान् सूर्य मण्डल के मध्य में भी रहते हैं। चक्रादिक आयुधों से भूषित हैं ॥ ९८ ॥ नोट—इस श्लोक से स्पष्ट है कि सूर्यमण्डल के मध्य में जो रूप रहता है

यही परात्पर रूप है । ठीक यही बात सनत्कुमार संहिता अन्तर्गत श्री रामस्तवराज के ४६ वें श्लोक में लिखी है कि--सूर्यमण्डल मध्यस्थं रामं सीतासमन्वितम् । अर्थात् सूर्यमण्डम के मध्य, श्री सीताराम जी विराजमान हैं । अब पाठकों को ६६ वें नं० के श्लोक का भाव समझ लेना चाहिये कि यह आदि रूप दो भुजाओं वाला ही है । और उन दोनों हाथों में धनुष बाण आयुध धारण करते हैं ॥ पुनः आनन्द संहिता का एक श्लोक पं० श्री रामटहलदास जी द्वारा प्रकाशित श्री राम सार संग्रह उत्तर भाग के पृ० १६ में लिखा है कि—स्थूलमष्टभुजं प्रोक्तं सूक्ष्मं चैव चतुर्भुजम् । परं तुद्विभुजं रूपं तस्मादेतत्त्रयं भजेत् ॥ अर्थात परंब्रह्म के मंगलमय विग्रह तीन प्रकार के हैं । स्थूल विग्रह अष्टभुज संयुक्त है और सूक्ष्म विग्रह चतुर्भुज युक्त है । और पर रूप द्विभुज है । इन तीनों विग्रहों की उपासना करनी चाहिये ॥ अस्तु भगवान् का द्विभुज रूप ही पर रूप है ॥ और मुकुट विजायट वनमाला से भूषित हैं । जिनको नित्यपार्षद सर्वदा देखते रहते हैं । यह भगवान् का परात्पर परमधाम है ॥ ६६ ॥ जिसकी वासुदेव नाम से प्रसिद्धि है । इस परात्पर रूप के अतिरिक्त वासुदेव नाम से कहे जाते हैं । वह भी एक मुख चार भुजावाले हैं ॥ १०० ॥

चक्राद्यायुध संयुक्तस्तस्य कृतं निशामय । स्थित्यै चक्रं सरसिजं दधानं सृष्टये पुनः ॥ १०१ ॥ मुक्तये पाञ्चजन्यं च गदां संहृये तथा । मयूरवर्ण-च्छयामः पीतनैसर्गिकाम्बरः ॥ १०२ ॥ स्फुन्मुकुटकेयूर काञ्चीमञ्जीर मण्डितः । स वासुदेवो भगवान्सृष्टि स्थित्यन्तमुक्तिदः ॥ १०३ ॥ केनापिहेतुने बभूद्वितीयश्च चतुर्मुखः । नारायणो वासुदेवस्तृतीयोऽयं द्विधा भवेत् ॥ १०४ ॥

अर्थ—और चक्रादिक आयुधों के सहित हैं । अब इनके कृत्य को भी कहते हैं । सो सुनिये धर्म की स्थिति (रक्षा) के लिये तो यह चक्र को धारण करते हैं । और सृष्टि के लिये कमल को धारण करते हैं ॥ १०१ ॥ आत्माओं के मोक्ष केलिये पांचजन्यशंख को धारण करते हैं । संसार के संहार के लिये गदा को धारण करते हैं । और ये मयूर कण्ठवत श्यामवर्ण हैं । अत्यन्त पीले रंग का वस्त्र धारण करते हैं ॥ १०२ ॥ प्रकाशमान मुकुट विजायठ कमर में करधनी किंकिणियों से भूषित हैं । इस प्रकार इन वासुदेव भगवान् का काम सृष्टि स्थिति प्रलय और मोक्ष देने का है । ॥ १०३ ॥ किसी कारण से अर्थात् परात्पर ब्रह्म की प्रेरणा से इन वासुदेव से दूसरे चार मुख वाले उत्पन्न हुये । फिर तीसरे नारायण हुये । फिर वही वासुदेव दो रूप

हो गये ॥ १०४ ॥

तयोरेको वासुदेवः शुद्धस्फटिक मणि संनिभः । नारायणेति यः प्रोक्तो नीलाम्बुद समप्रभः ॥ १०५ ॥ एतस्माद्वासुदेवात्तु व्युहोत्पत्ति निशामय । संकर्षणो वासुदेवातस्मात्प्रद्युम्न संभवः ॥ १०६ ॥ प्रद्युम्नादनिरुद्धोऽभूत्सर्व एव चतुर्मुखः । ज्ञानादि गुण सामान्यो वासुदेवः प्रकीर्तितः ॥ १०७ ॥ सत्त्वादि-गुणसामान्या प्राकृते प्रकृतिर्यथा । तथागुणां वैषम्ये वक्ष्यन्ते मूर्तयः क्रमात् ॥ १०८

अर्थ—उनमें से एक वासुदेव शुद्ध स्फटिक मणि के समान प्रकाशमान हैं । और जो नारायण कहे जाते हैं, वह नीलमणि के समान प्रकाशमान हैं ॥ १०५ ॥ इन वासुदेवों से व्युहों की उत्पत्ति हुई है । उस प्रसंग को आगे कहते हैं । वासुदेव से सर्वप्रथम सँकर्षण उत्पन्न हुये, उनसे प्रद्युम्न उत्पन्न हुये ॥ १०६ ॥ प्रद्युम्न से अनिरुद्ध उत्पन्न हुये, ये चारों चतुर्व्युह ही हैं । अब चारों के गुण भेद भी बताते हैं, वासुदेव तो ज्ञान, शक्ति, बल, ऐश्वर्य सभी गुण सम्पन्न कहे जाते हैं ॥ १०७ ॥ जैसे प्रकृति के अन्दर सत्त्वगुण की प्रधानता में रजोगुण तमोगुण भी और रजोगुण की प्रधानता में सतोगुण तमोगुण भी तथा तमोगुण की प्रधानता में सतोगुण रजोगुण भी अपने अंशों से सभी सब में रहते हैं । उसी प्रकार इन चतुर्व्युहों की मूर्तियों में भी इन ऐश्वर्यमय गुणों की विषमता क्रमशः कहते हैं ॥ १०८ ॥

गुणत्रयस्य वैषम्ये यथा स्युर्महदादयः । ज्ञानाधिकोऽभवद्ब्रह्मन्संकर्षण समाह्वयः ॥ १०९ ॥ बलाधिकः स्यात्प्रद्युम्न ऐश्वर्येचानिरुद्धकः । मूर्तिभ्यश्च चतुर्भ्यश्चतुर्विंशति मूर्तयः ॥ ११० ॥ जायन्ते क्रमशो ब्रह्मन्दीपाद्दीपान्तरं यथा । सर्वे चतुर्भुजाः पञ्चशङ्खचक्रगदाधराः ॥ १११ ॥ रुद्रादिदेवतानां च व्युत्पत्तिस्तावदुच्यते । वासुदेवादादि देवात्प्रथमात्केशवस्तथ ॥ ११२ ॥

अर्थ—जैसे महातत्त्व में तीन प्रकार का अहंकार सात्त्विकी, राजसी, तामसी रहता है । सात्त्विकी अहंकार से देवता, राजसी अहंकार से इन्द्रियायें, तामसी अहंकार से पंचतन्मात्रा, और पंचतत्त्व उत्पन्न होते हैं । पंचतत्त्वों में भी एकतत्त्व की प्रधानता में अन्य सभी तत्त्व समान रूप से मिश्रित होते हैं । हे ब्रह्मा ! उसी प्रकार इन चतुर्व्युहों में भी संकर्षण नामक भगवान् में ज्ञान की अधिकता है ॥ १०९ ॥ और प्रद्युम्न भगवान् में बल की अधिकता हैं । अनिरुद्ध भगवान् में ऐश्वर्य की अधिकता है । इन्हीं वासुदेव संकर्षण प्रद्युम्न अनिरुद्ध चार मूर्तियों से चौबीस अवतार सम्पन्न होते हैं ॥ ११० ॥

हे ब्रह्मा ! ये चौबीसों रूप इन चार मूर्तियों से उसी प्रकार उत्पन्न हुये, जिस प्रकार एक दीपक से अन्य दीपक जलाये जाते हैं । ये चौबीसों मूर्तियाँ भी सभी चतुर्भुज हैं । सभी शंख चक्रागदादि धारण किये हैं ॥ १११ ॥ इन्हीं सब मूर्तियों से रुद्रादिक देवताओं की उत्पत्ति कही गई है । प्रथम देवता वासुदेव से केशव और ॥ ११२ ॥

नारायणो माधवश्च त्रयस्त्वेते बभूविरे । संकर्षणाश्च गोविन्दो विष्णुश्च मधुसूदनः ॥ ११३ ॥ त्रिविक्रमो वामनश्च प्रद्युम्नाच्छ्रीधरस्तथा । अनिरुद्धाद्धृषीकेशः पद्मनाभश्च सुव्रतः ॥ ११४ ॥ दामोदरश्च तैरित्थं द्वादशांशाः प्रजज्ञिरे । चतुर्व्यूहाच्चतुर्व्यूहस्त्वन्योऽपि समपद्यत ॥ ११५ ॥ तस्याप्यं शान्प्रवक्ष्यामि चैतसा पुरुषर्षभ । वासुदेवाच्चतन्नामा तथा संकर्षणादपि ॥ ११६ ॥

अर्थ - नारायण तथा माधव ये तीन उत्पन्न हुये । संकर्षण भगवान् से गोविन्द विष्णु तथा मधुसूदन उत्पन्न हुये ॥ ११३ ॥ उसी प्रकार प्रद्युम्न भगवान् से त्रिविक्रम और वामन तथा श्रीधर ये तीनो उत्पन्न हुये । और अनिरुद्ध भगवान् से हृशीकेश पद्मनाभ ये सुन्दर व्रतवाले और ॥ ११४ ॥ दामोदर ये तीन उत्पन्न हुये । इसप्रकार पूर्वोक्त चार मूर्तियों के अंशों से बारह मूर्ति उत्पन्न हुये । फिर उन्हीं चारों से एक और भी चतुर्व्यूह उत्पन्न हुआ ॥ ११५ ॥ हे पुरुष श्रेष्ठ ! उन पूर्वोक्त चतुर्व्यूहों के अंशों से जो चतुर्व्यूह उत्पन्न हुआ उसको कहता हूँ सुनिये । वासुदेव से वासुदेव नाम का और संकर्षण से भी संकर्षण नाम का ॥ ११६ ॥

प्रद्युम्नादपि तन्नामा तन्नामैवानिरुद्धकात् । अभूवन्क्रमशस्तेभ्यश्चत्वारः पुरुषोत्तमः ॥ ११७ ॥अधोक्षजो नृसिंहश्च चतुर्थश्चाच्युतोमतः । एतस्मादपि संभूतः पुरुषोत्तमसंज्ञकात् ॥ ११८ ॥ व्युहादपि परो व्युहोजनार्दन मुखो महान् । जनार्दनस्तथोपेन्द्रो हरि कृष्णः समाख्यया ॥ ११९ ॥ एवं द्वादशधाभेदोद्वितीयः समपद्यत । चतुर्विंसति मूर्तीनां कीर्तनं पापनाशनम् ॥ १२० ॥ दर्शनं चोर्ध्वपुण्ड्रेषु वन्दनं च द्विजोत्तमाः । पश्यन्ति हन्ति शमलं किमितोद्वहतां तनौ॥१२२ ॥ नमतां सर्वलोकश्च नमन्ति ममशासनात् ।श्राद्धे जपेतथाहोमे स्वाध्याये देवतार्चने ॥ १२२ ॥ दानेतीर्थावगाहे च कृतं भवति चाक्षयम् । धत्ते पुण्ड्राणि यो मर्त्यो लक्ष्मीरेखायुतानि च ॥ १२३ ॥आयुः श्रीश्चबलं ज्ञानं वैराग्यं तस्य वर्धते । केशवादीनि नामानिलक्ष्मीकाणि बिभ्रताम् ॥ १२४ ॥

अर्थ—और प्रद्युम्न से भी प्रद्युम्न नाम का, उसी प्रकार अनिरुद्ध से भी अनिरुद्ध नाम का यह व्युह उत्पन्न हुआ। अब इन चारों से भी क्रमशः पुरुषोत्तम ॥ ११७ ॥ अधोक्षज तथा नृसिंह, अच्युत ये चारों पुरुषोत्तम नामक वासुदेव से उत्पन्न हुये ॥ ११८ ॥ पुनः वासुदेवादिक चारों से जनार्दन नामक प्रमुख व्युह उत्पन्न हुआ। वह इस प्रकार है। जनार्दन, उपेन्द्र, हरि, कृष्ण इन चारनामों से उत्पन्न हुये ॥ ११९ ॥ इस प्रकार बारह मूर्तियों का यह दूसरा भेद वर्णन किया। इन चौवीस मूर्तियों के नाम का कीर्त्तन सब पापों का नाश करनेवाला है ॥ १२० ॥ हे ब्राह्मण श्रेष्ठ ! इन पूर्वोक्त बारह मूर्तियों को ऊर्ध्वपुण्ड्रतिलक के रूप में धारण करने वाले वैष्णव का दर्शन और प्रणाम करनेवाले का सब पाप नष्ट हो जाता है। तब इन बारह तिलकों को शरीर में धारण करने वाले का महत्त्व क्या कहा जाये ॥ १२१ ॥ इन बारहतिलकों को धारण करनेवाले भक्तों को जो नमस्कार करता है। उसको सर्वलोक निवासी नमस्कार करते हैं। यह मेरा शासन है, और श्राद्धमें जपमें तथा हवन में और स्वाध्याय में देवताओं के पूजने में ॥ १२२ ॥ दान में तीर्थ स्नान में जो मानव श्री रेखा संयुक्त द्वादश ऊर्ध्वपुण्ड्रतिलक लगाने वाले श्री वैष्णवों का दर्शन प्रणामादि करता है, उसका पुरुषार्थ अक्षय हो जाता है ॥ १२३ ॥ और उसकी आयु, बल ज्ञान, वैराग्य ये सब बढ़ जाते हैं। और जो श्री संयुक्त केशवादि नामों के बारहों तिलकों को धारण करता है ॥ १२४ ॥

दुरितं यदिहोत्पन्नं तत्क्षणादपि नश्यन्ति। धृत्वा पुण्ड्राणि गात्रेषु ब्रह्मत्वं भावयेद्यदि ॥ १२५ ॥ ब्रह्मापरोक्षतामेति माया गच्छतिनाशनम्। अज्ञानाद-थवाज्ञानात्प्रेरणा लोभतोऽपिवा ॥ १२६ ॥ लक्ष्मीकान्तिनामानि धृत्वा पापात्प्र-मुच्यते। प्रायश्चितत्तं तु पापानां मङ्गलानां च मङ्गलम् ॥ १२७ ॥ विष्णुतीर्थ-मृदाऽङ्गेषु केशवादीनि करोतियत्। भुक्तिं मुक्तिमपीच्छूनां स लक्ष्मी काश्चदेवता ॥ १२८ ॥ उभयं तु प्रयच्छन्ति यद्यूर्ध्वतिलकंधृतम्। लक्ष्मीमृद्धि हरिं ज्ञानं भोगं मोक्षं सदैव तु ॥ १२९ ॥ प्रयच्छन्ति महाभाग वैष्णवा ऊर्ध्वपुण्ड्रिणः। द्वादशापि च नामानि वासुदेवादिकानि च ॥१३० ॥ प्रपन्नेषु च देयानि पावनाय सुखाय च। यस्यनाम भवेद्विष्णोः सम्बन्धेन धरासुर ॥१३१ ॥ नामापि च स्पृश्न्त्यस्य दूताः पितृपतेरपि। वासुदेवाद्देवदेवादपि केनापिहेतुना ॥ १३२॥

अर्थ—उसके शरीर से यदि कोई पाप उत्पन्न होता है, तो वह उसीक्षण नष्ट हो जाता है। और जो वैष्णव अपने अंगों में बारहों ऊर्ध्वपुण्ड्रों को नित्य धारण करते हैं, तथा अपने स्वरूप को परमात्मा के साथ भावना करते हैं, तो ॥ १२५ ॥ वे वैष्णव भक्त परमात्मा को प्राप्त हो जाते हैं, उनका मायाबन्धन नाश हो जाता है। और जो कोई अज्ञान अथवा ज्ञान से या किसी प्रकार की पराधीनता या लोभ से भी ॥ १२६ ॥ श्री संयुक्त केशवादि नामों वाले तिलकों को धारण करता है, वह सब पापों से मुक्त हो जाता है। यह तिलक समस्त पापों का प्रायश्चित और समस्त मंगलों का भी महामंगल करने वाला है ॥ १२७ ॥ जो भक्त भगवत् तीर्थों की मिट्टी से अपने देह में केशवादि नामों का तिलक करता है। और यदि भोग एवं मोक्ष की इच्छा वाला श्री संयुक्त तिलकों धारण करता है तो ॥ १२८ ॥ उस ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक धारण करने वाले को उन तिलकों के देवता भोग एवं मोक्ष दोनों फल देते हैं। और ऐश्वर्य एवं ऋद्धि सिद्धि तथा भगवत् तत्वरूप का ज्ञान सर्वदा बना रहता है ॥ १२९ ॥ वे ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करनेवाले महाभाग्यशाली श्री वैष्णव सर्वदा दिया करते हैं। वासुदेव आदिक जो बारह नाम हैं; वे भी ॥ १३० ॥ भगवत् शरणागत होनेवाले चेतन के पवित्र होनेके लिये, और सुखके लिये दिये जाने चाहिये। हे ब्राह्मण देवता! भगवान् के सम्बन्ध से जिसका नाम हो ॥ १३१ ॥ यमराज के दूत उसको बिलकुल स्पर्श नहीं कर सकते हैं। और किसी कारण अर्थात् परात्पर की प्रेरणा से जो आदि श्री वासुदेव हैं, उनसे भी ॥ १३२ ॥

क्षितेर्बीजाङ्कुरमिव मूर्त्यष्टकमजायत। ब्राह्मीचमूर्तिःप्रथमा प्रजापत्या-द्वितीयका ॥१३३॥ तृतीयावैष्णवीदिव्या चतुर्थीपुण्ड्ररूपिणी। पञ्चमीमानुषीज्ञेया सप्तमीचाऽऽसुरीमता ॥ १३४ ॥ पैशाची चरमाचैता मूर्तयो लोक विश्रुताः ॥ ॥ १३५ ॥ मीनाद्या जज्ञिरेविप्र चतुर्व्यूहाद्यथाक्रमम्। मत्स्यस्यः कूर्मवराहश्च वासुदेवादजायत ॥ १३६ ॥ नृसिंहोवामनोरामो जामदग्न्योऽप्यजायत। संकर्ष-णात्तथाज्ञये प्रद्युम्नाद्राघवोबली ॥ १३७ ॥ अनिरुद्धादभूतकृष्णः कल्कीतिदश-मूर्तयः। संकर्षणाश्चपुरुषःसत्यः प्रद्युम्नसंभवः ॥ १३८ ॥ जातोऽच्युतोऽनि रुद्धाच्चं बभ्रुस्त्रै लोक्यमोहनः। दाशार्हः शौरिन्नियांशा वासुदेवाच्च जज्ञिरे ॥ १३९ ॥ संकर्षणाद्धयग्रीवः शङ्खोदरनृपकेशरी। वैकुण्ठमूर्तिराधातुमुकुन्दाश्च वृषाकपिः ॥ १४० ॥

अर्थ—जैसे पृथ्वी में से बीज़ों का अंकुर उत्पन्न होता है । उसी प्रकार आठमूर्तियाँ उत्पन्न हुईं । प्रथम ब्राह्मीमूर्ति दूसरी प्रजापत्य ॥ १३३ ॥ तीसरी वैष्णवी दिव्यमूर्ति चौथी पुण्ड्ररूपिणी पाँचवीं मानुषी सातवीं आसुरीमूर्ति को जानना चाहिये ॥ १३४ ॥ आठवीं पैशाची इस प्रकार यह लोक प्रसिद्ध मूर्तियाँ मानी गई हैं ॥ १३५ ॥ हे ब्राह्मण देवता ! चतुर्व्युहों से मीनादिक अवतार भी प्रगट हुये । उनको भी सुनिये । वासुदेव से मत्स, कूर्म, वाराह उत्पन्न हुये ॥ १३६ ॥ संकर्षण से नृसिंह, वामन, परशुराम उत्पन्न हुये । प्रद्युम्न से बलवान राघव प्रगट हुये ॥ १३७ ॥ अनिरुद्ध से कृष्ण (बुद्ध) कलंकी उत्पन्न हुये इस प्रकार से दश मूर्तियाँ हुईं । फिर संकर्षण से पुरुष उत्पन्न हुआ । प्रद्युम्न से सत्य उत्पन्न हुआ ॥ १३८ ॥ अनिरुद्ध से तीनों लोकों को मोहन करने वाले अच्युत और बभ्रू उत्पन्न हुये । पुनः वासुदेव से यदुवंश में बलराम आदिक और अंश उत्पन्न हुये ॥ १३९ ॥ संकर्षण से हयग्रीव शंखोदर नरसिंह, वैकुण्ठमूर्ति, ब्रह्मा, मुकुन्द और वृषाकपि (सूर्य) प्रगट हुये ॥ १४० ॥

तत्रैवऽऽदिवराहश्च ततः संकर्षणादपि । अनन्तः पन्नगोजातः सहस्रफण-वान्बली ॥ १४१ ॥ सुदर्शनाद्यायुधानि किरीटादिविभूषणम् । मूर्त्याविर्भावस-मये सहै वैतानि जज्ञिरे ॥ १४२ ॥ देव्यश्च श्र्यादस्तत्तन्मूर्तिभेदं समाश्रिताः । श्रीवत्सा देवसकला जज्ञिरे दिव्यलाञ्छनात् ॥ १४३ ॥ गरुडः पक्षिणामिन्द्रो वाहको बलिनांवरः । वासुदेवादिमूर्तिभ्यश्छन्दो मूर्तिजायत ॥ १४४ ॥ कुमुदा-द्यैश्च भूतेशाः सर्वैः पारिषदैः सह । पादतश्चानिरुद्धस्य समभूवन्सहस्रशः ॥ ४५॥ सहस्रशीर्षचरणहस्तनेत्राद्भुताकृतेः । अनिरुद्धाज्जगज्जज्ञे स्वाङ्गादेव यथाक्रमम् ॥ १४६ ॥ ईश्वरः पुरुषोऽव्यक्तोऽनिरुद्धाख्यो निजाङ्गतः । मुखान्द्रिं च वन्हिं च छन्दांस्यङ्गनिपट्तथा ॥ १४७ ॥ जनयामास संलीनांश्चतुर्थांशो हरेरयम् । पादोऽस्य विश्वाभूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥ १४८ ॥

अर्थ—वहीं पर संकर्षण से आदिवाराह तथा हजारफणवाले बलवान अनन्त श्री शेष जी उत्पन्न हुये ॥ १४१ ॥ यह भगवत्मूर्ति जिस समय जो प्रगट हुईं. उनके साथ ही सुदर्शन आदिक आयुध एवं किरीट कुण्डलादि आभूषण भी प्रगट हुये॥१४२॥ और भगवान् के दिव्य श्रीवत्स चिन्ह से प्रत्येक मूर्ति के साथ मूर्ति भेद के अनुसार

उनकी समाश्रिता श्रीआदिक (शक्तियाँ) देवियाँ भी प्रगट हुईं ॥१४३॥ चतुर्व्यूहों के ज्ञान स्वरूप से वेदमूर्ति, सब पक्षियों के राजा वहन करनेवाले बलवानों में श्रेष्ट गरुड़जी उत्पन्न हुये ॥ १४४ ॥ और एकपाद विभूति स्वरूप अनिरुद्ध के अन्दर सभी भूतों के स्वामी त्रयदेव (ब्रह्मा विष्णु महेश) कुमुदआदिक अपने हजारों पार्षदों के साथ प्रगट हुये ॥ १४५ ॥ वही अनिरुद्ध अपने हजारों शिर, चरण, हाथ, नेत्र (आँख) अद्भुत आकार वाले विराट स्वरूप से अपने प्रत्येक अंगों द्वारा क्रमशः जगत को उत्पन्न किये ॥ १४६ ॥ इस प्रकार वही अनिरुद्ध अपने निज स्वरूप भूत एकपाद विभूति के अन्दर इस एकपाद विभूति के अधिष्ठात्री देवता पुरुषरूप अप्रत्यक्ष ईश्वर हो करके अपने निजी अंगों में मुख से इन्द्र और अग्नि को तथा छै अंगों समेत चारों वेदों को ॥ १४७ ॥ जो प्रथम स्वरूप में विलीन थे, प्रगट किया । यह अनिरुद्ध एकपाद विभूति का स्वरूप, चतुर्व्यूह रूप परमात्मा का चौथा अंश है । और तीन अंश अमृतमयि दिव्य त्रिपाद विभूति रूप से प्रकाशित हैं ॥ १४८ ॥

प्रद्युम्न संकर्षणकवासुदेव इतित्रयः । त्रिपादर्विभूतिराख्याता अमृत मुक्तिसेतवः॥१४६॥अतोदेवादिभिः पैत्रे ब्राह्मणा ब्रह्मकाङ्क्षिणः । त्रिपादंपुरुषं साक्षाद्यजन्ति मनसाधिया ॥ १५० ॥ आत्मानमनिरुद्धेन ह्यभिन्नं चिन्त्यचेतसा । प्रद्युम्नादि स्वरूपेण त्रिपादी पुरुषत्रयम् ॥ १५१ ॥ पैत्रंस्थानं वैष्णवानामिदमेव परंमतम् । मार्गोऽयमर्चिरादिः स्यात्सूर्यलोक मुखेन हि ॥ १५२ ॥ मार्गेणानेन गच्छन्ति वैष्णवाः परमात्मनि । नान्यलोके निवासाय श्रुतिरत्रसनातनी ॥१५३॥ कर्मणासूर्यपुत्रस्य लोकाद्द्वारेण वै गतिः । वसुरुद्रादिरुपेणपैत्र स्थानमथापरम् । १५४। वैष्णवानामनन्यानां वासुदेवमुपेयुषाम् । यजनं शुद्धरूपाणां केशवादि स्वरूपिणाम् ॥ १५५ ॥ सर्वकर्मसुविप्रेन्द्र सर्वावस्थासु नित्यशः । वैष्णवोनयजेदन्यं चतुर्व्यूहात्परमुने ॥ १५६ ॥

अर्थ—प्रद्युम्न, संकर्षण और वासुदेव उस चतुर्व्यूहात्मक परमात्मा के ये तीन अंश त्रिपादविभूति नाम से कहे जाते हैं । और ये अमृत स्वरूप मोक्ष के मार्ग स्वरूप हैं ॥ १४६ ॥ इसलिये परमात्मा के प्राप्ति करने की इच्छावाले विद्वान ब्राह्मण (भगवत् भक्त) अपने मन बुद्धि से देवतादिकों के आदि पितर इन त्रिपादविभूति स्वरूप पुरुषों को साक्षात् आराधन करते हैं ॥ १५० ॥ उनकी आराधना विधि इस प्रकार है । अपने चित्त से अपनी आत्मा को अनिरुद्ध के साथ एकपाद विभूति स्वरूप प्रद्युम्न आदि तीनों दिव्यपुरुषों को पूजते हैं ॥ १५१ ॥